गुरुदेव की दया

लेखिका

निर्मल जी

गुरुदेव की दया

लेखिका
निर्मल जी

प्रकाशक :—

शोभना प्रकाशन
१०५, विवेकानन्द मार्ग
इलाहाबाद

मूल्य—

द्वितीय संस्करण १९७५

मुद्रक—

राजलक्ष्मी प्रेस
१०५, विवेकानन्द मार्ग
इलाहाबाद

गुरुदेव की दया

गुरु दया का पार नहीं

गुरु दया भव तार दे।

नाम रूप अनेक जग में।
व्यापक रहता एक सब में।
ज्ञान कराये गुरुदेव हर में।।
गुरु दया०।

जीवन सुखमय होय तेरा।
मन को प्रभु में कर ले बसेरा।
ब्रह्मदीप कर देगा उजेरा।।
गुरु दया०।

पापी से पापी होय कोई।
गुरु दया से तारन होई।
मन्त्र जपे मुक्ती को पाई।।
गुरु दया०।

गुरु चरणों में प्रीत लगाओ।
नारायण प्रभु से दया कों पाओं।
जन्म जन्म की बेड़ी कटाओ।।
गुरु दया०।

श्री गुरुदेव की दया

१—हे जीवी ! जिस प्रकाश के अन्दर यह सब कुछ हो रहा है, वह तुम्हीं तो हो। इसको समझो और हृदय में इस भावना को दृढ़ करो।

२—आप जगत में भले ही शान्ति का अनुभव करें, परन्तु जगत में शान्ति नहीं है। जगत का हँसने रोने का ही वहाना है। क्योंकि आज जो हँसते हैं कल उसके लिये रोने का खजाना तैयार है।

३—जो अँधेरे में चलता है वह ठोकर अवश्य खाता है। दीपक को समक्ष रखो तब गिरने का भय नहीं रहेगा।

४—शारीरिक रोग द्रव्यों की युक्तियों से सम्बन्ध रखने वाली औषधियों से ठीक होते हैं। मानसिक रोग ज्ञान-विज्ञान से शान्त होते हैं।

५—रजोगुण और तमोगुण मन के दोष हैं। काम, क्रोध लोभ, मोह आदि मन के रोग है। वात, पित्त, कफ आदि शरीर के दोष हैं। ज्वर, अतिसार, खाँसी आदि शरीर के रोग हैं।

६—दिन भर विषयों का चिन्तन न करो केवल काम के समय उसका उपभोग कर लो फिर हरी से ही मतलब रखो।

७—भोग द्वारा काम की शान्ति नहीं होती। भोगों के भोगने से वह ऐंसे वढ़ता है जैसे अग्नि में घी डालने से।

८—चिन्ता रूपी अग्नि को सत्संग रूपी जल से ही शान्त किया जा सकता है।

९—इन्द्रियों का राजा मन वना बैठा है। हमारा कर्तव्य है हम मन के ऊपर राज्य करें। उसके गुलाम न वनकर सत्य की ओर उसको लगा दें।

१०—समय वहुत मूल्यवान है। अपना एक भी क्षण व्यर्थ न गँवाओ। समय का सदुपयोग करना परम धर्म है और ईश्वर-स्मरण में लगाया गया समय ही समय का वास्तविक सदुपयोग है। अतः जितना अधिक से अधिक समय हो सके भगवत-भजन में लगाओ।

११—'भगवत-भजन का समय ही नहीं मिलता', ऐसा कह कर अपने आपको धोखा मत दो। ईश्वर को तो धोखा तुम दे ही नहीं सकते, वह तो सर्वव्यापी, सर्वज्ञ है; तुम्हारे क्षण-क्षण के क्रिया कलापों का विवरण उसके पास है। अतः भगवान का स्मरण करना न भूलो। यदि तुम चाहो तो हर क्षण हर व्यस्तता में भगवान का नाम-स्मरण अपने मानस में कर सकते हो।

❁ ❁ ❁

जिस प्रकार नदियाँ वहते-वहते अन्त में अपने नाम और स्वरूप को छोड़ कर समुद्र में मिल जाती है, तद्रूप हो जाती हैं उसी प्रकार परमात्मा को जान जाने वाले सन्त उस परम श्रेष्ठ परमात्मा में मिल जाते हैं अपना नाम रूप पूर्णतया उसी में मिला देते हैं, पृथक् से अपना अस्तित्व ही नहीं रखते वल्कि परमात्मामय हो जाते हैं।

॥ श्री गुरवे नमः ॥

श्रावण का महीना था। वर्षा के स्थान पर कड़ी गर्मी थी। पानी के स्थान पर सूर्य की प्रचण्ड किरणों का ताप था। किसान आकाश को ओर दृष्टि लगाये अपने भाग्य की विडम्बना पर रो रहे थे, परन्तु पानी का कोई लक्षण नहीं। मेरा स्वास्थ खराव था। रात-दिन पेट में दर्द रहता था। गुरु वहन जमुना जी को ज्वर आ रहा था। इसी अवस्था में अचानक श्री पूज्य गुरुदेव जी की आज्ञा हो गई कि तुम लोगों को धर्म प्रचार के लिये वम्वई जाना है। हम लोग मूक थीं। क्या वोलते? मन अति ही खराव हुआ। हम लोगों का स्वास्थ भी ठीक नहीं है। अभी भगवान गुरुदेव को कितना दुख सहकर पाँच मासीय जल यात्रा से लाये हैं, परन्तु किस प्रकार से निर्मोही की तरह कह दिया तुम्हें प्रचार के हेतु जाना है। कुछ वोलना या प्रार्थना करना निरर्थक था क्योंकि हम लोग जानते थे, उन्होंने जिस वात के लिये कह दिया वह पत्थर की लकीर है।

रविवार का दिन था। महादेव प्रसाद पिता जी को टिकट Reservation के लिये आज्ञा प्रदान हो गई। वम्वई की Seat reserve हो गई। परन्तु दूसरे दिन समाचार पत्र में निकला वम्वई में वर्षा न होने के कारण वम्वई खाली कराई जायेगी। अतः वाहर के कोई भी यात्री वहाँ न आयें। अतः वम्वई वाले टिकट से इटारसी तक का reservation रहा तत्पश्चात् टिकट लेकर मद्रास जाने की आज्ञा मिली। हम लोग चुप थे। भक्त लोग संग जाने वाले कह रहे थे, क्या होगा? कैसे जायेंगे? तीन दिन का मार्ग है। रास्ते में हम लोग जल भी नहीं लेते। जल को भी सुखा देने वाली भीषण गर्मी है। श्रावण का मास है

परन्तु आकाश में एक बूंद पानी नहीं। हम लोगों ने सोचा जो कुछ होगा देखा जायेगा। एक दिन तो जिन्दगानी जानी ही है गुरु की इसमें भी कोई दया अथवा लीला होगी ? हम लोगों को इस वारे में सोचने की क्या आवश्यकता है ?

रविवार की सायंकाल को जाने का आदेश मिला शुक्रवार ता० १५ जुलाई के लिये टिकट बना। शुक्रवार की प्रातःकाल मैं भगवान गुरुदेव की विश्राम कुटी में गई। आप मुस्कराते हुये वोले, "पेट में वहुत दर्द है तो मत जाओ, हमने तो वैसे ही जाने को कह दिया था।" मेरे मन में आया देखो ! कैसे लीलाधारी हैं। एक मास के पूर्व से ही पेट में दर्द रहता है उसमें भी चलते-फिरते रहते हैं, फिर भी वाहर जाने की आज्ञा देकर ऐसी वात कर रहे हैं ? मन के आवेग को रोक कर भी चुप रही। वहन जमुना जी को भी कमजोरी थी पर उन्होंने भी कुछ नहीं कहा। पौने तीन वजे मध्याह्न में रेल जाती थी। श्री गुरुदेव भगवान की तथा दादा गुरु की पूजा करके तथा श्री गुरुदेव भगवान का वरद हस्त लेकर दो वजे आश्रम से स्टेशन के लिये चल दिये। द्वितीय साधन सप्ताह चल रहा था भक्तों की भीड़ लगी थी। इतनी जल्दी में यात्रा का निश्चय हुआ कि उन लोगों को पता ही नहीं लगा कि हम लोग वाहर जा रहे हैं। सव अवाक की तरह देख रहे थे, विना पानी के ऐसी कठोर गर्मी में आप लोग तीन दिन की यात्रा कैसे करेंगे ? पर मेरे गुरुदेव की दया को धन्य है, हम लोगों के अन्तःकरण में यह समस्या जरा सी भी स्पर्श नहीं कर रही थी।

स्टेशन पर वहुत से भक्तजन जिनको पता था पहुँचाने के लिये गये। सव यही कह रहे थे, वड़ी कठिन परीक्षा भगवान गुरुदेव ले रहे हैं ? कोई कहता है वही परीक्षा लेंगे वही दया करके शक्ति देंगे। स्टेशन में "काशी-एक्सप्रेस" आ गई, रेल में अपार भीड़ थी, रिजर्वेशन होने पर भी सीट मिलनी दुर्लभ थी।

कुछ सामान हम लोगों के साथ, कुछ श्यामलाल पिता जी दूसरे डिब्बे में लेकर बैठ गये। रेल चल दी। कुछ पता हो नहीं सामान कहाँ है ? हम लोग कहाँ है ? रेल चलते डा० मैतिन पिता जी ने कहा "सामान श्यामलाल जो लेकर बैठ गये हैं।"

कठोर गर्मी थी। रेल में बैठना मृत्यु से लड़ना था, विचित्र प्रकार की उमस थी। प्यास से गला सूखा जा रहा था, आश्रम से चलते समय भी जल नहीं पो सके थे। रात्रि दस बजे जबलपुर स्टेशन के पास तो ऐसा लगने लगा, मानो हम लोगों के प्राण यहीं खत्म हो जायेंगे। पंखा भी खराब पड़ा था। किसी तरह चैन नहीं पड़ रहो थी। मन में बड़ो हो ग्लानि हुई, कुछ दुःख भी लगा कि यह क्या कर रहे हैं गुरुदेव। इतने में जबलपुर स्टेशन आ गया। हम लोग जाकर दरवाजे के पास खड़े हो गये, एक सज्जन देवी जी भी गर्मी से परेशान अपने बच्चे के लिये प्लेटफार्म पर खड़ो थो, हम लोगों से वोली नीचे उतर आइये, बड़ी ही गर्मी है। हम लोग पैर में कुछ पहनते नहीं, रात्रि को दस बजे प्लेटफार्म के पत्थर इस प्रकार तप्त थे मानो उसको अंगारे में दहका दिये हों। हम लोग नंगे पैर बहुत देर तक प्लेट-फार्म पर नहीं खड़े हो सके। आकर अपनी सीट पर बैठ गये। थोड़ी देर पश्चात् रेल ने भी अपनी यात्रा प्रारम्भ कर दिया।

वास्तव में धन्य है गुरु की दया को, उस अविनाशो का कोई पार नहीं पा सकता। अज्ञातवास के समय द्रोपदी ने एक वार भगवान से पूछा "प्रभो ! जब दुर्योधन के आदेश से दुष्ट दुःशासन मुझे वस्त्रहोन करना चाह रहा था, तब आप तत्काल मेरी रक्षा करने क्यों नहीं आये ? दुर्वासा ऋषि के श्राप से बचाने तो आये तत्काल चले आप परन्तु उस समय आपकी दयालुता कहाँ चली गई थो" ? भगवान कन्हैया ने कहा, "द्रोपदी मेरे आने में विलम्ब नहीं हुआ, तुम्हारी पुकार में त्रुटि थी । मैं

भक्त के पीछे-पीछे फिरता हूँ। उसके पैरों के नीचे का काँटा चुनता फिरता हूँ। वहन द्रोपदी ! तुम अव कभी मत सोचना कि कन्हैया ने मेरी लाज वचाने में विलम्व को।"

आज यह कथन सत्य सिद्ध हो रहा था, प्यास से तथा गर्मी से व्याकुल हम लोग अपनी सीट पर आकर लेट गये। पता नहीं कव नींद आ गई। आपको आश्चर्य होगा गुरुदेव की दया पर कहाँ इतनी कठोर गर्मी जैसे आकाश में अंगारे वरस रहे हों, कहाँ जाड़ा लगने लगा। सर्दी लगने से नेत्र खुल गये, मैं मन में सोचने लगी, अभी तो गर्मी से तड़फ रहे थे और अभी कहाँ से सर्दी आ गई। ऊपर की वर्थ पर मैं लेटी थी. नीचे झाँक कर देखा, खूव वर्षा हो रही थो। प्यास तो विल्कुल बुझ ही गई, ऐसी वुझ गई कि यदि कोई जल लाकर देता तव भी न पिया जाता। गाड़ी लेट जा रही थी। ठीक ८ वजे इटारसी पहुँच गये। इटारसी से गाड़ी वदलनी थो। हम लोग सामान के साथ इटारसी पर उतर गये।

श्री श्यामलाल पिता जी सामान लेकर वैठे रहे प्लेटफार्म पर। हम लोग प्रतीक्षालय में गये, सिर से स्नान आदि नित्य कर्म से निवृत्त होकर, पूजा-पाठ आदि किया सत्संग किया। तीन घण्टे वहाँ पर गाड़ी को प्रतीक्षा करना था। हम लोगों ने सोचा यहाँ पर नीवू का शर्वत पी लें और तो कुछ हो नहीं सकता। साधना भी ऐसी चल रही जिसमें एक वार कच्चा फल ले सकते थे परन्तु साथ के फल प्लेटफार्म पर हो छूट गये थे, इसके अतिरिक्त जो संग में थे वह भी सड़ गये थे, जो गंगाजल ले गये थे वह दूध के वर्तन में किसी ने भर कर रख दिया था, उसमें वदवू आ गई थी। हम लोगों ने कहा, "श्री गुरुदेव भगवान भी खूव परीक्षा ले रहे हैं, अपने आप ही दया वरसाते हैं, अपने आप ही कसौटी पर कसते हैं।" क्या करते ? कोई भी चारा नहीं था,

रेल का समय भी हो गया था। हम लोग प्लेटफार्म पर आ गये। यहाँ से रिजर्वेशन भी नहीं था। हम लोग खूब हँस रहे थे, देखो क्या-क्या करते हैं कृपालू। इतने में गार्ड पिता जी आ गये। यद्यपि हम लोगों का निजी पूर्व परिचय कुछ भी नहीं था परन्तु भगवान गुरु की ऐसी दया हुई, दिल्ली एक्सप्रेस बिल्कुल खाली आई, हम लोगों का रिजर्वेशन बहुत ही अच्छी तरह उन्होंने कर दिया। सामान के कमरे में सारा सामान रख दिया। पिता जी ने अच्छी तरह से हम लोगों को बैठा दिया और कहा हम तो अब लौट जायेंगे। यहाँ तक बैठा दिया, अब हमारे पास समय नहीं है।

इटारसी के पश्चात् केवल भगवान के अवलम्ब पर चल दिये। मद्रास में किसी से परिचय नहीं था, वहाँ की भाषा से भी अपरिचित थे। परन्तु :—

जाको राखे साइयाँ, क्या कर सकता कोय।
पल-पल में हरि लखे, वाह-वाह करते सब कोय ॥

न अब ग्रीष्म को तपन रह गई, न बरसात की उमस। प्यास तथा भूख की तो कोई बात ही नहीं। उसका तो कोई विचार ही नहीं था। मन में यही विचार था कि नया शहर है. भाषा भी अनजानी है। केवल वहाँ के एक बाबा जी से परिचय था, वह भी पूर्ण रूपेण नहीं केवल एक बार, एक दिन आश्रम में आये थे, एवं एक भक्त जो आश्रम में आते जाते हैं, उनकी वहाँ कोठी थी, उसका पता उन्होंने दे दिया था। परन्तु धन्य है गुरु की गुरुता तथा उनकी कृपालुता की। सायंकाल ५ बजे हम लोग नागपुर पहुँचे। वहीं से एक गुजराती सेठ जी हमारे ही डिब्बे में आकर बैठ गये। पहले तो हम लोगों की ओर देखते रहे। तत्पश्चात् उन्होंने पूछा, "आप लोग कहाँ जा रहे हैं ? कहाँ से आये हैं ? किसी आश्रम के प्रतीत होते हैं।"

इन सब बातों की जानकारी होने के पश्चात् हम लोगों के संग की ही एक देवी जी से पूछा, "आपके आश्रम का क्या सिद्धान्त है ? मद्रास क्यों जा रहे हैं ? धार्मिक उद्देश्य क्या है ?" आदि प्रश्न करते रहे, उस देवी ने मेरे पास उन सेठ जी को वार्तालाप करने के लिये भेज दिया। सेठ जी से, दस मिनट तक वार्तालाप होता रहा, तत्पश्चात् वह बोले, "आप मद्रास में हमारे यहाँ ठहरिये, वहीं सत्संग करिये।"

हमने कहा, "आप ठीक ही कह रहे हैं, परन्तु हम लोग गृहस्थ से जरा अलग रहते हैं, गृहस्थ के अन्दर नहीं ठहरते।

सेठ जी बोले, "आप लोगों के दर्शन तथा ज्ञान से मुझे बड़ा आनन्द आ रहा है। आजकल भारतवर्ष में धर्म लुप्त प्राय हो गया है।"

हमने कहा, "ठीक कह रहे हैं आप, परन्तु जिस दिन भारत से धर्म लुप्त हो जायेगा उस दिन पृथ्वी रसातल को पहुँच जायेगी। हाँ सच्चे धर्म का अभाव हो गया है। धर्म के अनुयायी कम हो गये हैं, वक्ताओं की संख्या अधिक हो गई है।" इसी तरह वार्तालाप होता रहा।

वह सेठ जी अति ही धार्मिक विचार के तथा सज्जन थे। बीच-बीच में आते कभी जल के लिये पूछते, कभी फल के लिये। हम लोगों ने कहा, "पिता जी हम लोग रास्ते में जल, फल कुछ भी नहीं लेते। आप किसी प्रकार चिन्ता मत करिये। पर उनका दिल न मानता, बार-बार आते और पूछते, आप लोगों को कोई कष्ट तो नहीं है ? उनके बार-बार पूछने पर, लीलाधारी की लीला पर बड़ी ही हँसी आती। वाह रे नटवर ! एक ओर से अपने आप तो नियम में बाध्य करके उसको पूरा करता है। दूसरी ओर हृदय की परीक्षा लेता है कि मेरा भक्त कितने पानी में है।

तीसरे दिन रविवार को ठीक ६ बजे हम लोग मद्रास स्टेशन पर पहुँच गये। एक ओर सेठ जी अपने यहाँ ले जाने को तत्पर थे, दूसरी ओर बाबा जी भी स्टेशन पर आये थे। बाबा जी के साथ जाना उचित समझ कर, न हम लोग उस दिन सेठ जी के साथ गये, न भक्त के बताये हुये पते पर गये। बाबा जी सामान के साथ रहे। हम लोगों को टैक्सी पर बैठा दिया, अँग्रेजी में उसको पता समझाया, किसी प्रकार बाबा जी के स्थान पर पहुँचे। बाबा जी ने बहुत ही श्रद्धा प्रेम के साथ हम लोगों का सत्कार किया। जैसे आपका नाम सीताराम बाबा था, वैसे ही आपका स्वभाव सरल तथा समझदार था। आपने हम लोगों के ठहरने की योग्य व्यवस्था कर दी थी। रात्रि वहीं पर बिताई।

प्रातःकाल सेठ जी ने आने को कहा था पर आये नहीं, अतः हम और अम्बिका जी सेठ जी का पता लगाने ९ बजे प्रातःकाल निकल पड़े। बड़े आश्चर्य की यह बात इतने बड़े शहर में केवल सेठ का नाम मालूम था और जाति मालूम थी उनका न पता ही था न मकान नम्बर। भाषा से अनभिज्ञ अकेले टैक्सी में जाना उचित न समझ कर हम लोगों ने रिक्शा किया। जिन भक्त ने अपनी कोठी का पता दिया था, पहले सोचा उनके यहाँ चला जाय। रिक्शे वाले से अँग्रेजी में बात करते हैं तब भी नहीं समझता, हिन्दी तो उसके लिये फारसी थी ही। वह हमारा मुँह देखता है, हम उसका। एक दो शब्द तामिल के आते थे गुरुदेव की दया। कहाँ से वह शब्द दिमाग में आ गये, किसी तरह हम लोग उन भक्त की कोठी में पहुँचे। वहाँ पर कारिन्दे ने कोठी दिखा दी, वहीं पर अचानक एक और भक्त मुवा के परिचय के मिल गये। हम लोगों को उन्होंने दो-तीन सत्संग भवन दिखाये, तत्पश्चात् हम लोगों ने सेठ जी का पता बताया, उनकी

धर्म पत्नी ने किसी प्रकार से ढूँढ़ते-ढाँढ़ते हम लोगों को सेठ के

यहाँ पहुँचा दिया। सेठ जी थे नहीं। उनकी धर्मपत्नी वाहर आईं, सेठ जी को दुकान से फोन करके बुलाया। सेठ जी ने कृतज्ञता प्रकट की आप स्वयं आ गईं हम तो अभी पहुँच जाते। अन्ततोगत्वा उन्होंने हमारे रहने का सीता-भवन में अच्छा प्रवन्ध करा दिया। यह नत्थमल डागा जी का मन्दिर था। ऊपर रहने की सुन्दर तथा सुव्यवस्थित व्यवस्था थी।

दूसरे दिन ता० १६ से पुरुषोत्तम मास लग रहा था। सत्संग प्रारम्भ करना अनिवार्य था। हम लोग नवीन आगन्तुक, परन्तु मेरे गुरुदेव की ऐसी दया कि सारा कार्य स्वयं ही सुलझता चला गया। हम लोगों ने पता लगाया वहाँ एक कमेटी थी, जिसके द्वारा भजन कीर्तन का आयोजन होता था। उस कमेटी के प्रधान को बुलाया उनसे वात की, उनके आने के पश्चात सभी आईं। १६ को सत्संग का नियम प्रारम्भ कर दिया। ता० २० से तो भक्तों की संख्या वढ़ते-वढ़ते इतनी वढ़ी कि अन्त में दरवाजे तक लोग खड़े रहते थे। सत्संग में कभी न आने वाली उस मन्दिर का दर्शन जिन्होंने कभी नहीं किया था, जो कभी घर से वाहर सन्तों के यहाँ नहीं जातीं थीं, ऐसी-ऐसी मातायें सत्संग में नित्य नियम से आकर दर्शन करती थीं एवं भागवत सुनती थीं। एक मास का भागवत था। हमने प्रारम्भ में आप लोगों को वताया है कि हमारा स्वास्थ्य विलकुल ठीक नहीं था परन्तु ऐसी उस दीनानाथ की दया हुई कि पेट का दर्द तो भाग हो गया। अम्विका वहन की कमजोरी न जाने कहाँ भाग गई। ढाई वजे से ६ वजे तक सत्संगत का कार्यक्रम चलता था। श्रोतागण वड़े ही आनन्द से बैठे रहते थे।

मद्रासी, मारवाड़ी, गुजराती सभी प्रकार की जनता होती थी। मारवाड़ियों की भीड़ वहुतायत से होती थी।

हम लोग गंगाजल का ही सेवन करते हैं, संग में जो गंगा-जल लेकर गये थे, वह मार्ग में ही चू गया। कुछ छलक गया। वहाँ पहुँचने पर जल ही नहीं था। संग में जो जल ले गये थे तीन-चार दिन चला तत्पश्चात दो दिन तक प्यासे ही रहे। किसी से कोई परिचय नहीं था जो जल के लिये कहें। दो दिन पश्चात् सेठानी जी श्रीमती डागा जी ने पूछा, कि आप लोगों को कोई कष्ट तो नहीं है, जो कुछ सेवा हो वताइयेगा। कष्ट न सहियेगा। तत्पश्चात् हम लोगों ने कहा "यदि वहती हुई नदी के जल की व्यवस्था हो सके तो करवा दीजिये। उन्होंने कहा, यहाँ पर दक्षिण प्रयाग में संगम है। यहाँ से ५० मील दूर पर है, हम मँगवा देंगे। दूसरे दिन मोटर भेज कर उन्होंने इतने सारे वर्तनों में जल मँगवा दिया कि खूब चरणामृत में बँटा एवं जितने दिन रहे उतने दिन पिआ केवल उसके तीन चार दिन पूर्व समाप्त हुआ। उस समय जव जल समाप्त हुआ डागा जी की मोटर खराव पड़ी थी, हम लोगों ने सबेरे से जल नहीं पिआ था अचानक कलकत्ते से एक पुराने भक्त आ गये, उन्होंने हरद्वार का जल एक डोल और हण्डा भर कर ला दिया। तत्काल भगवान कृष्ण की वाणी याद आ गई—

> अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
> तेषां नित्याभियुक्तानां योग क्षेमं वहाम्यहम्॥

अर्थात् जो अनन्य भाव से मेरे में स्थित हुए भक्तजन मुझ परमेश्वर को निरन्तर चिन्तन करते हुए, निष्काम भाव से भजते हैं, उन नित्य एकीभाव से मेरे में स्थित वाले पुरुषों का योगक्षेम मैं स्वयं कर देता हूँ।

श्री गुरुदेव की ऐसी दया कि मन्दिर में एक नौकर था मद्रासी होते हुए भी वह हिन्दी समझता था। जैसा लक्षमन उसका नाम

था वैसा वह सेवा में प्रवीण था। मन्दिर की सारी सफाई वड़ी हो श्रद्धा प्रेम से करता था। हम लोगों की भी सेवा करता था।

डागा जी की वहन श्रीमती जेठा वाई वड़ी ही धर्मात्मा एवं व्यवहार कुशल थी। नम्रता और सेवा भाव अति उत्तम था भगवान के चरणों में भी सुदृढ़ अनुराग था। श्रीनाथ जी उनके इष्टदेव थे। उन्हीं की सेवा पूजा में रमी रहती थी। हम लोगों को हर एक सेवा का विचार रखती थी।

इतना वड़ा शहर लेकिन भगवान गुरुदेव की ऐसी अनुपम दया साथ रहती थी कि हम लोगों के समक्ष समस्या आ भी जाती, स्वयं ही भाग भी जाती थी। दो-तीन दिन दूध विल्कुल पानी का मिला हुआ प्राप्त हुआ। हम लोगों ने उसको प्रयोग में नहीं लिया, तत्पश्चात् स्वयं ग्वाला सामने दुह कर दे जाता था। हम लोग ६ भक्त थे, किसी वात की कोई भी अड़चन नहीं हुई। हम लोग मन में यही सोचते थे, गुरु की दया को देखो कोई विरला ही अनुभव कर पाता है अपरिचित अनजान देश में आकर कोई भी किसी प्रकार की दिक्कत न होना गुरु का दया ही तो है। वहन अम्बिका जी की एक दिन हालत वहुत खराव हो गई थी, हम लोगों ने सोचा अव कुछ दिन के लिये सो गईं किन्तु भगवान का चरणोदक के सेवन से ही दूसरे दिन विल्कुल अच्छा हो गई। नाना रूप में वही गुरु अनेक औषधि लेकर आते हो चले जा रहे थे। ऐसा प्रेम सागर तथा निज आत्मापन व्यक्तता था, मानो हम सव न जाने कितने पुराने हिले मिले हैं। ज्ञान से तो पुराना आदि परिचय है ही इसमें कोई दूरता नहीं। ज्ञानी के लिये यह भाव उपयुक्त है अज्ञानी यह वात नहीं समझता। जैसे करेन्ट समस्त वस्तुओं को अपने में ही आकर्षित करता चला जाता है इसी प्रकार से भक्तगण श्री गुरुदेव भगवान के चरणों में

झुके ही चले जाते थे। प्रातःकाल ७ वजे से भक्तगण आना प्रारम्भ कर देते थे रात्रि १० वजे तक भीड़ लगी ही रहती थी। देख कर यही पंक्तियाँ स्मरण आ जाती थी।—

हर रंग में तुही, हर ढंग में तू ही।
हर दिल में तुही, हर रूप तुही॥

वह देश नहीं, जिसमें नहीं तू।
वह वेष नहीं, जिसमें नहीं तू।
जरा जान ले गुरु से तू ही तुही॥हर०॥

कोई मन्जिल नहीं जिसमें नहीं तू।
कोई राह नहीं जिसमें नहीं तू।
जरा नैनों से देख तू भी वही॥हर०॥

हँसता है कोई उसमें भी वही।
कुछ कहता कोई उसमें भी वही॥
गुरु दया को समझ ले अब तो सही॥हर०॥

पहने है कोई फटे टुकड़े को।
ओढ़े है कोई शाल दुशाले को।
जरा ख्याल में देखो तूही तूही॥हर०॥

हर संकल्प विकल्प और कामों में।
यश कीर्ति और नामों में॥
नारायण वताते वो ही वोही॥हर०॥

छोटी-छोटी सी वालिकायें प्रभु के गुणों को सुनकर उन्मत्त सी हो जाती थी। राजा से लेकर रंक तक कथा को सुनने के लिये आते, कथा कीर्तन के अतिरिक्त भी वार्तालाप करने के लिये आते थे सभी के हृदय में असन्तोष एवं अशान्ति की ही

समस्या बनी मालूम पड़ती थी। जिन्होंने कुछ-कुछ हरी को हृदय में स्थान दे रखा था, उन्हीं के अन्तःकरण में कुछ शान्ति भासित होती थी।

एक दिन प्रभु की लीला की बड़ी ही रोचक घटना घटी। हम लोगों की कथा समाप्ति का केवल चार दिन ही शेष रह गया था। भीड़ का कोई ठिकाना नहीं था। हम लोगों का जहाँ सत्संग चलता था, उसके एक मंजिल ऊपर भी एक सत्संग हाल था। कुछ भक्तों ने किसी पंडित के द्वारा ग्यारह दिन की भागवत का आयोजन रक्खा। जो समय हमारे सत्संग का था, वही समय उन्होंने भी निश्चित कर लिया। नीचे सत्संग चल ही रहा था, सत्संग की समाप्ति का ही समय था, लाउड स्पीकर लगा हुआ था। भजन हो रहा था, बड़े-बूढ़े सब आनन्द में मग्न थे। सब के नेत्र बन्द थे। हम लोगों के नेत्र भी बन्द थे। अचानक बड़ी जोर से किसी के चिल्लाने की आवाज आई—यही आप लोग संत हैं, इतना हल्ला मचा है, अभी लाउड स्पीकर बन्द करा देंगे, आप लोग हमारी भागवत में विघ्न डालते हैं। हमने सोचा कोई आसुरी स्वभाव के वश आ गया है। अब सत्संग समाप्त होने वाला ही है। जो देवियाँ कीर्तन कर रही थीं उनमें से एक देवी की जो हरमोनियम बजा रही थी आवाज आई—भइया ! आप क्या कह रहे हैं ! दूर से बात करिये, शान्ती से बात करिये। आप पास में मत आइये। इतने में सुना कीर्तन करने वाले और जोरों से कीर्तन कर रहे हैं, कीर्तन भी समाप्त हो गया। हमने जब आँख खोला तो देखा, एक भाई बड़ी तेजी से ऊपर चढ़ गया। प्रसाद चरणामृत लेने के पश्चात् सब जनता जोर-जोर से कहने लगी—"संत का अपमान हम लोग बिल्कुल नहीं सह सकते।"

ऐसी त्यागमयी मातायें, केवल एक ही बार फल का आहार लेकर रहें, हमने प्रत्यक्ष देख लिया इन लोगों के जीवन को। हम लोग कल से इसकी चौगुनी जनता इकट्ठी करके लायेंगे। ऊपर नीचे सब बैठकर सुनेंगे। कोई क्या कर सकता है। अभी हम लोग जाते हैं, ऊपर कथा कराने वाले से बात करते हैं। उन लोगों ने हमारी कथा में ऐसा क्यों किया ? उन्हें पता था यहाँ कथा होती है आदि-आदि बातें। हमने लोगों से कहा—"आप लोग शांति धारण करिये, चुप रहिये। इस तरह चिल्लाने वाला वही कन्हैया था, दूसरा कोई नहीं था। उसकी आत्मा एवं मेरी आत्मा एक ही है, उसको अपनी गलती स्वयं प्रतीत हो गई। हम लोगों के कहने से उस समय लोग चुप हो गये, परन्तु चर्चा बनी ही रही। क्या-क्या उन लोगों ने परस्पर में बात की। तत्पश्चात् उस कथा की प्रधान कार्यकर्ता तथा अन्य सहायक भी आये। क्षमा माँगने लगे एवं कहने लगे बड़ी भारी त्रुटि हो गई, आपका ही बच्चा था, क्षमा करिये, जोश में आकर उसने इस प्रकार अपमान करा, यह उसके लिये सर्वथा अनुचित था। यह सब सुनकर हमें बड़ी हँसी आई, हमने सोचा देखो गुरुदेव की लीला, अभी तो अपने आये, इस तरह की बातें सुना गये, फिर अपने ही आकर ऐसा कहला रहे हैं।

यह कथा डागर जी के पास तक पहुँच गई। वह भी आये। उन्होंने उन सब सदस्यों को बुलाया जिन्होंने ऊपर चन्दे से भागवत बैठवाई थी और कहा, यह आप लोगों ने बहुत अनुचित किया। यह सब देवियाँ प्रतिष्ठित गृह की हैं। अनेक जन्मों के पुण्य संस्कार जगे, तब यह लोग भगवान गुरु की शरण में रह गईं एवं गुरु की सेवा में निरत रहती हैं। आज के युग में इस प्रकार गुरुनिष्ठ तथा आत्मनिष्ठ होकर, त्यागमय जीवन कोई

व्यतीत करता है । यह लोग चंदा भी नहीं मांगते स्वयं जिसकी जो इच्छा हो वह सेवा कर सकता है आदि-आदि वातें । आप लोगों को इस प्रकार से संत का विरोध ही करना था तभी आपने उसी समय में जव एक सत्संग चल रहा था अपना सत्संग रखा । आप या तो चार दिन पश्चात् अपनी भागवत प्रारम्भ करवाते अथवा समय दूसरा रखते ।

दूसरे दिन ही उन लोगों का माइक विगड़ गया, हमारे पास आये, यदि आपको कोई असुविधा न हो तो अपना माइक दे दीजिये। हम लोगों का कार्य समाप्त हो गया था, माइक दे दिया गया। उनका सत्संग समाप्त होने के पश्चात्, वह भाई जो तामसी वृत्ति को अपना कर एक दिन पूर्व नाना वातें कह गया था, आया, भागवत के पण्डित जी एवं उनके प्रधान कार्यकर्त्ता आये और कहने लगे, आज आपने हम लोगों की लाज रख दी नहीं तो वड़ा गड़वड़ हो जाता। हमने कहा, हमारा सत्संग आपका सत्संग दो नहीं एक ही है। हम आप दो नहीं एक हो हैं। यह वस्तु मेरी ही नहीं है आपकी भी है। आपकी मर्यादा और हमारी मर्यादा दो नहीं है एक ही है। तत्पश्चात् उस भाई ने, एक दिन पूर्व की तामस वृत्ति के लिये क्षमा माँगी। तत्पश्चात् कहीं भी मिलता, हाथ जोड़ता, कई वार क्षमा प्रदान करने के लिये कहलाया। भगवान गुरु की दया उस पर भी हो गई। हमने उससे कहला दिया, "वात कुछ भी नहीं, हमारे संग उद्दंडता की, कोई वात नहीं, मां रूप में, वहन रूप में, संत रूप में जिस रूप में भी वह समझे, क्षमा मिल ही गई। पर आज के पश्चात् अपनी जोशीली वृत्ति को शांत करके समझदारी से कार्य करें एवं किसी भी संत तथा अपने पूज्य जन या लघु जन से इस प्रकार का व्यवहार न करें।

भगवान गुरुदेव ने धर्म प्रचार के लिये भेजा था, इसीलिये कहीं जाने का कोई विचार ही नहीं था। मद्रास के किसी मंदिर में न गये थे, न कोई इच्छा थी। केवल श्री गुरुदेव की आज्ञा पालन करनी थी, यहाँ आ गये यह भावना थी। एक दिन डागा जी आये और वोले "आप लोग कहीं भी न जाइये, परन्तु सन्निकट के मन्दिर तथा तिरूपती वाला जी (जिनका दर्शन करने का विशेष महत्व है तथा दर्शनीय मन्दिर है) का अवश्य दर्शन करिये। हम अपनी गाड़ी दे देंगे, साथ में हमारी वहन चली जायेंगी, आपको दर्शन करा देंगी। जिस दिन जाना था उसके दो दिन पूर्व उन्होंने कहला दिया, हमारी दोनों गाड़ी खराव हो गई हैं। हम लोगों ने कहला दिया ठीक है। मन में सोचा, हम लोगों की कोई इच्छा थी ही नहीं, जिस हरी ने दर्शन की प्रेरणा की थी और साधन जोड़ा था, उसी की अव इच्छा नहीं है ऐसा सोच कर मन से वात ही हटा दी। दैव इच्छा ! दूसरे दिन ही एक की कौन कहे, दो-दो मोटर आकर खड़ी हो गईं, मन्दिर का दर्शन कराने के लिये। पग-पग पर गुरु की दया का अनुभव होता था। जो वरदहस्त यात्रा के प्रारम्भ में उन्होंने शीश पर रक्खा था, वह पल-पल पर छत्रछाया करता रहता था। सच में कहा है—

गुरु सम दाता नहीं, देवे दान अमोल।
क्या कोई ऐसा दान दे, जाकर मोल न तोल ॥
माता से हरी वड़ा, हरि से सौ गुन गुरुदेव।
प्यार करे अवगुण हरे, देवे निजरूप का मेव ॥

हमारे शास्त्रों के वचन वास्तव में अनुभवी वचन हैं, गुरु अनहोनी को होनी कर सकता है। वस उनकी कृपा कटाक्ष की देरी रहती है, इसीलिये उनको अक्सर दानी कहा है।

गुरु अनहोनी होनी करे, होनी देय मिटाय ॥

जिस दिन मद्रास से प्रस्थान करना था, भक्तों की भीड़ लगी हुई थी, सब अपने-अपने हृदय को साथ में लिये खड़े थे। २ बज कर २० मिनट पर गाड़ी छूटने का समय था। डेढ़ बज गया, अभी सामान भी नहीं गया था। किसी भक्त ने सब सामान मोटर में लादकर स्टेशन भेजा। उन लोगों को विदा करते-करते २ बज गया। कुछ भक्तों ने कहा, बिल्कुल समय हो गया है, अब गाड़ी छूट जायेगी। किसी को मत समझाइये, कोई समझने वाला नहीं है। चलते-चलते दो बज कर दस मिनट हो गये। कुछ कह रहे थे अच्छा है गाड़ी छूट जाये, फिर रुकना पड़ेगा। कुछ कह रहे थे नहीं, परेशानी बढ़ जायेगी। लोगों के मन में पूर्ण विश्वास था कि अब गाड़ी नहीं मिलेगी। सब की बात हम लोग सुन रहे थे और गुरु दया के विश्वास पर स्टेशन चले ही गये। आपको पढ़कर आश्चर्य होगा कि स्टेशन पहुँचने के २० मिनट पश्चात् गाड़ी ने स्टेशन छोड़ा।

हम लोग अच्छी तरह से बम्बई पहुँचे, वहाँ पर उस दिन मजदूरों की तथा सवारी की हड़ताल थी। भगवान की दया, दादर से ही दो कुली हम लोगों के साथ हो लिये। बम्बई जंक्शन के आते ही, वह दोनों कुली स्वयं सामान उठा-उठा कर नीचे उतारने लगे। स्टेशन पर मोटर आ गई थी, उसी से हम लोग गन्तव्य स्थान पर पहुँचे, पर स्थान कैसा था ? वह वर्णन में नहीं आ सकता। एक रात्रि काटनी वहाँ मुश्किल हो गई। रात्रि चाय आदि भी नहीं पिया, दूसरे दिन प्रातःकाल भी नहीं पिया, ललिता बाई जी का ही प्रबन्ध था, उनको बुलाया। ग़लतफहमी में वह स्थान ठीक किया गया था। दिन भर परिश्रम के पश्चात् तपस्वियों के योग्य ही समुद्र के बिल्कुल किनारे स्थान का प्रबन्ध हो गया। शनैः-शनैः बिना परिश्रम के ही सत्संग आदि का सारा प्रबन्ध स्वतः होता चला गया।

एक दिन माधव बाग से सत्संग समाप्त करके हम लोग मोटर में स्थान पर आने के लिये बैठे थे। इतने में शीशे के पास एक अधेड़ व्यक्ति आया और बोला, बड़े महात्मा बने हो ? यदि महात्मा हो तो पानी बरसा दो न। हमने सुनकर भी अनसुना जैसा करके कुछ भी ध्यान नहीं दिया। परन्तु मेरे भगवान गुरु-देव यह कैसे सहन कर सकते थे ? स्थान पर पहुँच भी नहीं पाये थे कि ऐसी पानी की झड़ी लगी कि चार दिन तक पानी ही नहीं रुका। केवल सत्संग के समय दो-तीन घंटे के लिये जल रुक जाता था, लेकिन ज्योंही सत्संग के समाप्त होने का समय आता, वर्षा की झड़ी लग जाती थी।

जिस बम्बई शहर में लोगों को सत्संग के स्थान के लिये परेशान होना पड़ता है, भगवान की ऐसी दया हुई कि हम लोगों को कहीं के लिये कोई भी प्रयास नहीं करना पड़ा। कितने स्थानों से सत्संग के लिये निमन्त्रण आये, समयाभाव होने से वहाँ जा नहीं सके।

बहुत से तार्किक कहते हैं, भगवान की कृपा का क्या प्रमाण है। मानव कर्म करता है उसका फल प्राप्त करता है, इसमें भग-वान का कौन सा एहसान ? ऐसी बात नहीं है, इस प्रकार का वाद-विवाद करना मानव की बड़ी भारी भूल है। जिस प्रकार से एक पिता अनेक पुत्र होने पर जो पिता की सेवा करता है तथा उनकी आज्ञा पालन करता है वही विशेष प्रिय होता है। इसी प्रकार से कर्म का भोग तो मानव के पीछे लगा हुआ है, परन्तु प्रभु की कृपा की बदौलत विशेष सुख सुविधा प्राप्त हो जाती है।

राई सो पर्वत करे, पर्वत राई माहिं।
अस समर्थ रघुनाथ की, क्यों न भजत मन ताहिं ।।

एक दिन की घटना है, बेहद वर्षा हो रही थी, हम लोग कमरे में सो रहे थे, दरवाजे तथा खिड़की के द्वारा वाहर का पानी इतना भीतर गया कि कमरे में ही गंगा जी लग गईं। हम लोगों के विस्तर जल के ऊपर तैरने लगे। प्रातःकाल ४ वजे जब हम लोग उठे. देखा कमरा तो जलमय हो रहा है, हम लोगों के विस्तर चारों ओर से विल्कुल भीग गये थे, वीच की जरा सी जगह केवल कम्वल के द्वारा भीगने से वाकी थी। प्रातः सारे विस्तर धोये गये, सुखाये गये। वर्षा हो ही रही थी। विस्तर संध्या तक ज्यों के त्यों। हम लोगों ने सोचा आज अच्छी गुरु की परीक्षा है। रात्रि को वैठ कर ही विताया जायेगा। ललिता वाई जी नित्य हम लोगों के साथ ही सत्संग में जाती थी। स्थान पर पहुँच कर, थोड़ी देर रुक कर अपने घर चली जाती थीं। उस दिन विना पूछे. विना कुछ कहे, वह कमरे से चली गई, जहाँ विस्तर सूख रहा था वहाँ सवने देखा। तत्पश्चात आकर हम लोगों के पास बैठ गई, हम लोगों को कुछ पता नहीं। विना वताये ही वाजार चली गई एवं थोड़ी देर में चार जोड़ी विस्तर वाजार से खरीद कर ले आई। हम लोग विस्तर को देखकर हैरान हो गये, उनसे कहा भी कि आपने ऐसा क्यों किया। हम लोगों को आपने कुछ भी नहीं वताया। उन्होंने कहा, क्या आप लोग ठंड में बैठी रहतीं। माँ की तरह वह हर एक वात का विचार करती थी।

आप जरा सा विचार करिये, यह गुरु की दया नहीं तो क्या है। जिसका जीवन में कोई सम्वन्ध नहीं वह माँ की तरह प्रत्येक वातों का विचार करे एवं प्यार करे यह उसी की देन है। नरसी मेहता ने ठीक ही कहा था—

जो सेठ वन कर आता।
नटवर नजर आता।।

उसकी कृपा के स्वरूप का वर्णन नहीं किया जा सकता। वह वाणी गम्य तथा दिव्य है। प्रभु की दया निष्कलङ्क है, वह अवर्णनीय है "न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा" उसकी परा विद्या के द्वारा सबमें एक आत्म-भावना की स्थिति आती है। जगत के विराट स्वरूप में उसी इष्ट का दर्शन होता है। उनकी दया से शान्ति का मार्ग स्वयं खुल जाता है। साधक का चित्त शुद्ध हो जाता है, संसार के भोग्य पदार्थ पाने की वासना नहीं रह जाती। शिष्य आत्मज्ञ हो जाता है। उसकी सेवा के लिये गुरु की कृपा अनेकों रूपों में सैकड़ों को खड़ा कर देती है। ऐसे आत्मज्ञ की सेवा के लिये लोग तरसते रहते हैं।

हम लोगों के रहने के दो विभाग थे, एक स्थान वह था जिसमें हम लोगों के लिये दूध फल आदि की व्यवस्था थी, दूसरा जहाँ हम लोग रहते थे, वहाँ केवल भगवान रहते थे एवं वस्त्र आदि। जहाँ पर भोजन आदि की व्यवस्था की वह स्थान कुछ एकान्त पड़ता था, सेवा करने के लिए जो भक्त वहाँ पर रहते थे, उनको कुछ भय सा लगता था, उस स्थान का एक कुत्ता जहाँ संध्या हुई बस उन लोगों के दरवाजे पर जाकर बैठ जाता था। जहाँ चार बजते तभी उठकर इधर-उधर हो जाता था। पूजा के कमरे के बाहर आता था, थोड़ी देर खड़ा रहता, फिर तत्पश्चात चला जाता था, मानो भगवान को प्रणाम करने आया हो। कभी किसी वस्त्र अथवा वस्तु का स्पर्श नहीं करता था। दरवाजे पर बैठा रहता था, भक्तों को कभी नहीं भूँकता था, इधर-उधर के कोई भी लोग यदि आ जाते थे, तो भूँक-भूँक कर उनके पीछे पड़ जाता था। इस प्रकार से एक माह तक वह कुत्ता सुरक्षा करता रहा। पहले दिन ही जैसे हम लोग निवास स्थान पर पहुँचे, वह एक दृष्टि से देखता रहा, पर जरा सा भी कुछ नहीं बोला। हम लोगों के आने-जाने के मार्ग में लेटा रहता था,

जहाँ हम लोगों की आहट सुनता था, उठकर दूसरी ओर चला जाता ।

गुरु-दया का कोई पार नहीं है, यह तो अनुभवसिद्ध सत्य है । जिस प्रकार नमक की डली जल में पानी का थाह लेने चली तो स्वयं जल रूप हो जाती है, उसी प्रकार कोई भी साधक यदि गुरु की शक्ति का पार पाना चाहे तो आकाश में पुष्प खिलाने जैसी बात है । लेकिन फिर भी अपनी मानसिक शान्ति एवं जगत के उद्धार के लिये उनकी महिमा का ज्ञान किया ही जाता है । मेरे गुरुदेव की महिमा और उनकी दया को भाषा में लिपिबद्ध करना चाहे तो असम्भव है, फिर भी दो-चार घटना लिखे बिना दिल मान ही नहीं रहा है।

हमें ऐसा लगता है कि मानव की बुद्धि में कैसा अज्ञान का चश्मा चढ़ा हुआ है, स्वयं उनके समक्ष सूर्य का प्रकाश फैल रहा है फिर भी उलूक के सदृश उन्हें सत्यता पर शंका रहती है । वह सत्य को स्वीकार नहीं कर सकते, जैसे उलूक सूर्य के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता । यह भी मलिन संस्कार की विशेषता के कारण ही होता है । जीव के संस्कार शुभ विशेष होते हैं, तब ही उन्हें सत्य पुरुष का समागम मिलता है और वह उनकी सत्य शक्ति को स्वीकार करते हैं । यदि मलिन संस्कार विशेष रहता है तो वह सत् पुरुष में आस्था नहीं रखते, न उनकी शक्ति को स्वीकार करते हैं । भूले भटके किसी पुण्य संस्कार के फल उनके द्वार पर पहुँच भी जाते हैं तो वे उनमें नाना छिद्रान्वेषण करने के सिवा कुछ नहीं प्राप्त कर पाते ।

हम लोग सद्पुरुषों की कुछ भी सेवा भक्ति नहीं कर सकते तो कम से कम उनका छिद्रान्वेषण भी न करें । मानव अपनी आँखों पर जिस प्रकार का चशमा धारण करता है उसकी दृष्टि में उसी प्रकार का संसार उसे दृष्टिगोचर होता है । श्वेत रंग

का चश्मा धारण करने पर जैसा संसार है वैसा ही दृष्टिगत होता है। अतः ज्ञान का चश्मा धारण करना चाहिये, जिसके फलस्वरूप लोक और परलोक दोनों ही वन सके।

भगवान गुरुदेव की दया मेरे ऊपर अनन्त और अपार है। यदि आज उनकी कृपा न होती तो इस भक्ति मार्ग के भीषण पथ पर स्वयं परीक्षा लेने के हेतु कांटे विछाते भी जाते हैं और मेरे भक्त को दुःख न हो, ऐसा सोच कर अपने कोमल हृदय से उन कांटों को दूसरी ओर से हटाते भी जाते हैं। धन्य है गुरुदेव आपकी शक्ति और तत्व को।

भीतर हाथ सहाय दे, वाहर मारे चोट।

मीरा के लिये विष का प्याला भिजवाने वाले तुम्हीं थे और अमृत का प्याला वन जाने वाले तुम्हीं थे। जगन्नाथ भक्त को कैदखाने में डलवाने वाले तुम्हीं थे और राजा को स्वप्न देकर मुक्त कराने वाले तुम्हीं थे। आप परीक्षा भी लेते हो, फिर परीक्षा की कठिनाई आप से देखी नहीं जाती तो तत्काल उलझी गट्ठी को सुलझा देते हो। जव-जव हम जैसे छोटे भक्त की आप परीक्षा लेते हैं, तव-तव स्वयं आप कितनी सरसता से उससे मुक्त भी कर देते हैं।

गुरु दया की स्मृति करने मात्र से हृदय भर आता है, नेत्रों से नन्हीं-नन्हीं बूँद वरसने लग जाती है। यदि आपकी दया की नजर न होती तो हम जैसे भक्तों की गुजर भी न होती। १६७२ का वह दिन आज भी भुलाये नहीं भूलता। प्रभु ने कहा तुम लोगों को धर्म प्रचार के हेतु जाना है। हम अभी नहीं जायेंगे, तुम लोग हमारे लिये स्थान भी देख लेना और जीवों को कुछ ज्ञानोपदेश भी दे देना जिससे कुछ तो लोगों को ज्ञान हो।

प्रातःकाल सात वजे की ट्रेन से जाना था, हम लोग आश्रम से ६ वजे चल दिये। स्टेशन पहुँचने पर पता चला कि गाड़ी तीन

घंटे विलम्ब से आयेगी। दस वजे ट्रेन आई, साढ़े दस वजे इलाहावाद से छूटी, ६ वजे सायंकाल जवलपुर पहुँची। एक भक्त भय्यां परिवार सहित मोटर लेकर हम लोगों को लेने के लिये आये थे। वहाँ पर वही एक परिचित भक्तों में थे।

नगर में हम लोगों के ठहरने के योग्य स्थान न मिलने के कारण, नगर से दस मील की दूरी पर, नर्वदा नदी के किनारे एकांत स्थान में हम लोगों के निवास की व्यवस्था कर दी थी। रात्रि को दस वजे हम लोग निर्धारित स्थान पर पहुँचे। गुरुदेव की कैसी परीक्षा, न तो वहाँ पर जल की व्यवस्था, न दूध की व्यवस्था, न वहाँ कोई मनुष्य था। प्रातःकाल पूजा-पाठ करके चले थे, सारा दिन योंही वीता। रात्रि में हम लोग सामान रख कर योंही सो गये। कर क्या सकते थे? वर्षा कहती थी प्रलय का पानी वरसा कर छोड़ेंगे। अँधेरी रात्रि, नल की कोई व्यवस्था नहीं थी। प्रातःकाल चार वजे से उठकर बैठे रहे। किसी से परिचय नहीं था, परिचय करते भी किससे, पेड़ पौधे और घास जड़ थी, मनुष्य कोई था नहीं। गुरुदेव को याद करते रहे, साथ में शिवा वहन और कल्याणी वहन थीं। सूर्य ने शनैः-शनैः अंधकार को फाड़कर प्रकाश फैलाया, हम वाहर निकले, मजदूर दर्जे का एक व्यक्ति पास से जाते हुये दिखाई पड़ा। उसको आवाज दी, ऐ भय्या जरा इधर आइये। वह आ गया। हमने कहा भय्या यहाँ कहीं कुंआ नहीं है और नर्वदा जी जाने का रास्ता किस ओर से है जरा वता दीजिये क्योंकि हम लोग परदेशी साधु मातायें हैं। उसने अँगुली से दिखा दिया, नर्वदा जी उस ओर से जाइये और कुंआ तो वहुत दूर पर है, वर्षा में आप लोग कैसे जायेंगी और पानी खींचेंगी? हम लोगों ने सोचा ठीक है, नदी पास में वतला रहा है तो नदी में जाकर ही स्नान करना चाहिये। वह आगन्तुक राहगीर तत्काल ऐसा कहकर

चला गया। हमने शिवा बहन और कल्यानी बहन से कहा—हम सामान के पास बैठे हैं, यदि कोई व्यक्ति दूसरा दिखाई पड़ेगा तो दूध का भी प्रबन्ध कर लेंगे, तुम लोग एक साथ ही जाकर स्नान कर लो, अभी वर्षा भी रुक गई है। हम तो अकेले भी चले जायेंगे, इधर व्यवस्था भी कर लेंगे।

एक घंटे में यह लोग स्नान करके आईं, जब तक यह लोग लौट कर नहीं आईं, भगवान गुरुदेव से प्रार्थना करते रहे—हे नाथ! नये स्थान में कुछ घटना न घटे, इनको सकुशल यहाँ पर पहुँचा देना। प्रभु ने पुकार के अनुसार सकुशल इन लोगों को पहुँचा दिया। इन लोगों के आ जाने के पश्चात् अब ज्योंही यह सेवक स्नान करने के लिये नर्बदा की ओर प्रस्थान किया, मूसला धार वृष्टि होने लगी, चारों ओर बादल छा गया। बीहड़ टेढ़े-मेढ़े मार्ग को पार करते हुये एक खाईं में पहुँच गई। उसी खाईं के नीचे से नर्बदा मय्या दर्शन दे रही थी। खाईं के नीचे उतरना प्रारम्भ किया। मिट्टी बड़ी फिसलनदार थी, किसी भी प्रकार से पैर आगे बढ़ाया नहीं जाता था, ज्यों एक कदम चले त्यों पैर फिसल जाये। न पीछे ही लौटा जा सकता था, न आगे ही बढ़ा जा सकता था। हमने सोचा, गुरुदेव तुम्हारी इतनी ही सेवा करनी थी तो वह भी सेवक को मंजूर है, क्योंकि एक आपके सिवा न किसी से अपनत्व है न परतत्व है, न मोह है न माया है, न राग है न आसक्ति है। जीवन में न जाने कितने भूचाल आते हैं, हृदय रूपी पृथ्वी फट जाती है, हृदय का दुख रूपी उद्गार बाहर आ जाता है, लेकिन कुछ दिन पश्चात पुनः शान्ति, नवीन सुधार एवं आत्मोन्नति का मार्ग समक्ष दिखाई पड़ने लग जाता है। ऊपर से वर्षा, चारों ओर धूँधल, नीचे फिसलन, और ज्यादा नीचे तलहटी में जल, नीरव जंगल, नदी की वेग गति की कलकल ध्वनि का शब्द बार-बार

कानों में गूंज उठता था। आखिर पैर फिसल ही गया, लेकिन मेरे सामने मेरे गुरु, हृदय में गुरु, रोम-रोम में गुरु व्याप्त हैं, हमें पता ही नहीं चला, एक घास के उपर पैर आकर पड़ गया, ऐसा प्रतीत होता था मानो घास की पतली पगडंडी किसी ने वना दिया है, उसी पगडंडी के सहारे-सहारे नर्वदा के तट पर पहुँच गये, लेकिन तट भी तट नहीं था, वहां तो पहाड़ों के कंगूरे वने थे। अन्दाज हो नहीं पड़ता था कि किधर से और कहां उतरें। गुरु का नाम लेकर ज्यों नीचे पैर डाला, गहराई का कोई अन्दाज हो नहीं पड़ रहा था। स्नान तो करना ही था, ज्यों किनारा पकड़ कर स्नान करने लगे, किनारे की मिट्टी खिसकने लगी। हृदय एक वार धड़क उठा, ऐसा लगा गुरु समक्ष खड़े हैं। पैर के नीचे एक वड़ा सा पत्थर आ गया, तत्काल हम उसी पर खड़े हो गये और नदी के वाहर आ गये। मां को पुष्प चढ़ाया, जल चढ़ा कर प्रणाम किया, तत्पश्चात गुरु का नाम लेते हुये न जाने कैसे पाँच मिनट में निवास स्थान पर पहुँच गये। दो घंटे हो चुके थे निवास स्थान से प्रस्थान किये हुये, सव लोग परेशान थीं कि आखिर चली कहाँ गई? ज्यों वहाँ पर पहुँचे साथ की गुरु वहनें पूछने लगीं, इतनी देर कहाँ लगी। हमने कहा गुरु परीक्षा ले रहे थे और साथ-साथ दया का दान भी देते जा रहे थे।

हमारे मन में लगा, आज ही यह स्थान छोड़ देना है। पूजा-पाठ नित्य कर्म ज्योंही समाप्त किया था भक्त भय्या आ गये। कहने लगे सव ठीक-ठाक रहा, हमने कहा—"जो गुरु ने किया सव ठीक ही किया, कहीं उनके दरवार में वेठीक हो सकता है, लेकिन यह स्थान आज छोड़ना ही है, मेरे भगवान गुरुदेव अन्तरात्मा से आदेश दे रहे हैं, तत्काल यह स्थान छोड़ दो, अतः अव दूसरा स्थान देखना चाहिये। वह वोले, मैंने तो वहुत स्थान

देखे लेकिन मुझे स्थान नहीं मिला, अब आप स्वयं ही स्थान का
अन्वेषण कर लीजिये, उसी घोर वर्षा में उनकी कार में बैठकर
स्थान देखने गये, एक दो स्थान देखने के पश्चात् अचानक हमारी
दृष्टि दत्त मन्दिर के प्रांगण में पड़ी। हमने कहा, यहीं पर
गाड़ी रोकिये। हम लोग इसी मंदिर में रहेंगे। उन लोगों ने
कहा, इस मन्दिर में व्यवस्था नहीं हो सकती, यह तो महाराष्ट्रियों
का मन्दिर है। हमने कहा, बात करने में क्या दिक्कत है, बात
तो की जाय। सब घट में वही हरी तो हैं, उनसे रिक्त कौन सा
स्थान है। अनुमति मिल गई, हम लोग उसी मन्दिर में आ गये।
अन्त में प्रेसीडेन्ट साहब आ गये, वह गुरुदेव के श्रद्धालु भक्तों
में से एक थे। दूसरे दिन समाचार पत्र में निकला कि अमुक
स्थान में नर्बदा में १० फिट पानी बढ़ गया अतः नर्बदा वृज भी
जलमग्न हो गया और जिस स्थान में हम लोग थे वह भी जला-
मय हो गया था। हमने अपनी बहनों से कहा—"देखो भगवान
गुरु की दया कितनी अपार है। कैसे संकटों से बचाया। यदि
अभी साधारण जीव होता तो उसका जीवन समाप्त हो गया
होता।"

इसी प्रकार एक बार श्री गुरुदेव भगवान ने नेपाल में धर्म
प्रचार हेतु भेजा था। हम, जमुना जी तथा दो अन्य बहनें थीं।
दो दिन पूर्व गुरु आदेश हुआ कि तुम लोगों को काठमान्डू जाना
है। हम लोगों ने कहा, गुरुदेव भगवान, हवाई जहाज के टिकट
कैसे इतनी जल्दी मिल जायेंगे। आजकल वर्षा के दिन हैं, प्लेन
का भी कुछ निश्चित नहीं रहता, यहाँ से पटना जाने के लिये
ट्रेन की टिकट कैसे मिलेगी। गुरुदेव की वाणी निकल चुकी थी।
जो निकल गया सो निकल गया। हम लोगों ने सोचा जैसे भी
हो जो कुछ करना पड़ेगा करेंगे। सायंकाल आदेश दिया था,
रात्रि को अचानक एक नेपाली भाई काठमान्डू से आ गये। हम

लोगों ने उनसे बात की। उन्होंने कहा, हम आप लोगों के साथ पटने तक चलेंगे और वायुयान का टिकट दिलवाने की चेष्टा करेंगे। हम लोगों ने शुक्रवार की रात्रि को पटने के लिये प्रस्थान किया। शनिवार को सवेरे ४ वजे पटने पहुँच गये। जो लोग स्टेशन पर आये थे उन लोगों ने कहा, एक सप्ताह तक आप लोगों को प्लेन की टिकट नहीं मिल सकती, हमारी रिश्तेदार शरगुजा की रानी साहव काठमान्डू जाने के लिये कई दिन से ठहरी हुई हैं, हवाई अड्डे पर वतलाया गया है कि सात दिन तक वायुयान में कोई जगह खाली नहीं है, अतः आप लोगों को भी एक सप्ताह तक प्रतीक्षा करना ही होगा। हम लोगों ने कहा, ठीक है अभी तो स्नान आदि करते हैं, आगे जैसी मेरे भगवान गुरुदेव की कृपा होगी। हम लोग स्नान आदि करके हवाई अड्डे पर पहुँचे। कलकत्ते से आने वाला विमान काठ-मान्डू जाने वाला था। हम लोगों ने विमान चालक से पूछा, भय्या, यदि किसी प्रकार भी हम लोगों को वैटने का स्थान मिल सके तो हम लोग बुकिंग आफिस में वात करें। मेरे गुरु विमान चालक के रूप में घूम रहे थे। उसने कहा, हवाई जहाज में खाली सीटें हैं, लेकिन समय आधे घंटे का ही शेष है। हम लोग शीघ्र ही बुकिंग अफसर से मिले और सारी परिस्थिति बतलाई। उसने शीघ्र ही टिकट दे दिया और स्वयं खड़े होकर सामान तुलवा दिया। गुरु दया के फलस्वरूप असम्भव भी सम्भव हो गया और हम लोग पौने दस वजे काठमान्डू पहुँच गये। जो विशाल भक्तों का समूह पुष्पमाल लिये हवाई अड्डे पर आशा निराशा की लहरों में गोते लगाता हुआ खड़ा था हम लोगों को देखते ही प्रफुल्लित हो गया और श्री गुरुदेव भगवान की जयघोष होने लगी।

धन्य हैं मेरे गुरुदेव और उनकी गुरु दया। इस भव नदी को पार करने के लिये तीन साधन मुख्य बतलाये गये हैं—१. सुन्दर और दृढ़ नौका, २. अच्छा और चतुर केवट, ३. अनुकूल वायु। मेरे गुरुदेव चतुर और अलौकिक मल्लाह हैं, उनकी कृपा और सत्संग ही अनुकूल वायु है, यह मानव तन ही सुदृढ़ नौका है। अतएव हम लोग गुरु कृपा विना कर ही क्या सकते हैं, क्षण-क्षण में उनकी दया की आवश्यकता है। वह अपनी करुण दृष्टि यदि जीव पर डाल दें तो उसका महान अहोभाग्य है। एक बार उनके चरण स्पर्श करने को प्राप्त हो जायँ तो जीवन कृतार्थ हो जाय। पर वह बुद्धि और विवेक जागृत हो तब तो। साधना से बढ़कर भी गुरु की दया अमोघ और अक्षय है। काठमान्डू का सत्संग समाप्त होने के पश्चात् सब भक्त लोग कहने लगे, आप लोग इतनी दूर भारत की सीमा पार करके आये हैं तो यहाँ के प्राचीन मन्दिर एवं पुण्यदायी तीर्थों का दर्शन कर लीजिये। हम लोगों ने सोचा—श्री गुरुदेव भगवान की आज्ञा भी है कि जहाँ भी जाओ वहाँ के प्राचीन मन्दिर का दर्शन कर लेना। ऐसा सोचकर कह दिया गया, ठीक है कल "तातो पानी" का दर्शन करने जायेंगे। तातो-पानी चाइना की सीमा पर था, एवं काठमान्डू से सौ मील दूर पर पड़ता था। तीन मोटर लेकर अन्य भक्त लोग भी साथ हो लिये। जब तातो पानी तक पहुँचने में बीस मील शेष रह गया, बड़ी जोरों से वर्षा होने लगी। वहाँ की वर्षा यहाँ के सदृश नहीं होती, चारों ओर घोर अन्धकार छा गया और आकाश से जल इस प्रकार धरातल पर आये, मानो सहस्रों झरनों से एक साथ पानी गिर रहा है। मार्ग के दोनों ओर गगनचुम्बी पर्वत तथा बीच में मोटरें चल रही थीं। कुछ पता ही नहीं चल रहा था कि क्या करना चाहिये और आगे मोटर कैसे बढ़ाई

जाय। मार्ग का पता न चलने से सब लोग हताश होकर बीच में ही रुक गये। हम लोग भी मोटर से नीचे उतर आये और सब को उतार कर कहा—"देखिये अब आप लोग भगवान गुरुदेव श्री नारायण महाप्रभु का स्मरण करिये, उनकी कृपा से वर्षा बन्द हो जायेगी और धूँधल हटकर मार्ग प्रशस्त हो जायेगा।" ऐसा सुनते ही सब भक्तगण श्री नारायण महाप्रभु की जयनाद करने लगे। हम, जमुना बहन जी, शिवा जी और दुर्गाजी गुरु-मंत्र का जप करने लगे। भगवान गुरु की ऐसी दया हुई कि एक माला पूरी भी नहीं हो पाई थी कि तत्काल ऐसा प्रतीत होने लगा मानो आकाश पर बाँध बना कर किसी ने पानी रोक दिया और सूर्य की किरण चमकने लगी। लगभग २५ भक्त साथ में थे, सभी की खुशियों का वारापार न रहा, सब के मुख से यही निकलने लगा, धन्य हो गुरुदेव, धन्य हो, आपकी दया धन्य है, आपकी शक्ति धन्य है। आधे घन्टे में हम लोग "तातो पानी" नामक स्थान पर पहुँच गये। जहाँ पर मोटरें खड़ी की जा रही थीं, वहाँ पर बड़ा भारी पर्वत खंड टूट कर गिरने वाला था, लेकिन इस बात का किसी ने ख्याल ही नहीं किया था। उस निर्जन वन में एक देहाती व्यक्ति आया और भक्तों से कहने लगा, जरा ऊपर भी देखो, पहाड़ नीचे आने ही वाला है। जल्दी मोटरें हटाइये। भक्तों ने मोटर हटा दी। लेकिन प्रसाद देने के लिये खोज करने पर भी उस व्यक्ति का पता नहीं चला कि वह कहाँ से आया और किधर चला गया।

मोटरें आगे बढ़कर खड़ी कर दी गईं, लेकिन बीच में शिला-खंड टूट कर गिर पड़ी थी। अब प्रश्न यह उठा कि बिना मार्ग से शिलाखंड हटाये मोटरें पार कैसे होंगी। हम लोगों ने कहा—"जिस गुरु ने इतनी कठिनाइयों को पार कर दिया, काल के मुख से सब को निकाल दिया, धन एवं जन का कोई नुकसान नहीं

होने दिया वही आगे भी पार लगायेगा। पहले तातो पानी का दर्शन एवं स्नान तो किया जाय। पर्वतीय मार्ग से काफी नीचे उतर कर बहुत ही रमणीक और चौरस एक स्थान है, जहाँ पर शंकर जी की एक प्राचीन मूर्ति है, उसी मूर्ति के मुख से जल की तीन धारा बहती हैं। एक बहुत ऊष्ण, दूसरी मध्यम ऊष्ण, तीसरी हल्की ऊष्ण। तीनों धाराओं में स्नान करने का महान पुण्य है और यह भी दन्त कथा है कि जो इसमें स्नान करता है उसके समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं। वहाँ पर सब ने स्नान किया, तत्पश्चात् शंकर जी का पूजन किया गया। सबको प्रसाद बांटा गया। सब ने शिलाओं पर बैठकर वनभोज किया। हम लोगों ने भी फल खाया। लगभग पाँच बजे लौटने की तैयारी होने लगी, लेकिन समस्या यह थी कि मोटर आगे बढ़े कैसे ? हम लोगों ने कहा—"आप लोग गुरु की दया को क्यों भूलते हैं। गुरु दया तो इतने बड़े भव से पार कर देती है, यह तो पत्थर का टुकड़ा ही है।" यह वार्तालाप चल ही रहा था कि एक बड़ी लैंड मस्टर जीप आई, उसमें बहुत से लोग औजार लेकर बैठे हुये थे, उन्होंने शिला को खंड-खंड करके मार्ग से हटा दिया, तीन गाड़ियों ने मिट्टी के ढेर को पार कर लिया, लेकिन एक गाड़ी अंग्रेजी थी, वह मिट्टी के ऊपर चल ही नहीं सकती थी। उन मोटर वालों ने उस गाड़ी को जैसे हाथ से फुटबाल एक जगह से दूसरी जगह कोई रख दे, उसी प्रकार उन लोगों ने गाड़ी को रख दिया। रात्रि ९ बजे तक हम लोग सकुशल अपने-अपने स्थान पर पहुँच गये।

१९६७ की बाढ़ के विषय में कौन नहीं जानता ? प्रयागराज का लगभग आधा हिस्सा जलामय था। श्री नारायण आश्रम भी चारों ओर से जलामय हो रहा था। आश्रम की सड़क भी जल में डूबी हुई थी। गंगा जी का जल गंगा जी की ओर वाली

दिवार के ऊपर लहरें मार रहा था। समस्त सीढ़ियाँ जल में डूब चुकी थीं। पूर्व की ओर जगदम्बिका बहन के कमरे में, पश्चिम में अमरूद के बगीचे में माँ गंगे अपना भयानक नृत्य दर्शा रही थीं। गृहस्थ भक्तों की मोटरों की लाइनें लगने लगीं कि गुरुदेव के सहित श्री गुरुदेव भगवान कहीं अन्य सुरक्षित बगीचे में विराजें। श्री गुरुदेव नारायण महाप्रभु ने कहा—"मेरे भगवान गुरु सर्वत्र विराजमान हैं, कोई स्थान उनसे खाली नहीं है। गुरु-समाधि की शरण को छोड़ कर हम अन्यत्र कहीं नहीं जायेंगे। गुरु दया हमारे मस्तक पर है। गंगा जी भी हमारे गुरु का स्वरूप हैं, हम कहीं भी नहीं जायेंगे। जिन भक्तों को जाना हो उनको हमने अनुमति दे दी है। वह अपने प्राणों की सुरक्षा करें।" भक्तों ने साधकों से आग्रह किया, हम लोगों ने कहा—"हमारे भगवान गुरुदेव की हम लोगों के ऊपर अपार दया है। गुरु दया से किसी का बाल भी बांका नहीं होगा। गुरु-समाधि, श्री नारायण महाप्रभु का गोपाल कुंज, सेवा कुटीर एवं भक्त निवास, जहाँ-जहाँ भक्तों के रहने का केन्द्र है, वह सब जल-मय नहीं हुआ है, गुरु दया से होगा भी नहीं। माँ गंगे में भी गुरु ही हैं, अतः अनहित कैसे हो सकता है? भगवान शरणागतों की रक्षा स्वयं करता है।" सरकारी कर्मचारी आये और श्री गुरुदेव भगवान से निवेदन करने लगे कि कम से कम आप भक्तों को सुरक्षित स्थान पर भेज दीजिये। आप आत्मज्ञ हैं, आत्मज्ञ शोक, मोह से दूर रहता है। वह सर्व सामर्थ्यवान होते हैं, लेकिन यह लोग तो साधक हैं। श्री गुरुदेव नारायण महाप्रभु ने कहा—हमने तो आज्ञा दे दी है, लेकिन यह लोग गुरु चरण को छोड़कर जाना नहीं चाहते। आप लोग वृथा चिन्ता न करिये।

होंनी होय सो होयगी, ताको मेटे कौन ।
देख देख अचरज भयो, कवीर भयो मौन ।।

सन्त महापुरुषों एवं सांसारिक जीवों में यही अन्तर है, वह प्रतिकूलता में एकदम घवड़ा कर हाहाकार मचा देते हैं, लेकिन महापुरुष उन प्रतिकूल परिस्थितियों में उद्विग्न रहित होकर प्रसन्न ही दिखाई पड़ते हैं। न उनको दुःख की उद्विग्नता व्यापती है, न सुख की स्पृहा। उनका मानसिक संतुलन सदैव शान्त रहता है। वे विवेकशील पुरुष मन को अपने अधीन रखते हैं।

श्री गुरुदेव महाप्रभु ने टोकरे भर-भर कर खूव गंगा माता को पुष्प चढ़ाये, फल चढ़ाये। आये हुये कर्मचारियों ने भी फल प्रसाद खाया। प्रायः भक्तों की भीड़ नाव में चढ़-चढ़ कर आती ही रहती थी, विना नौका के कोई भी व्यक्ति देवी मन्दिर से गुरु समाधि तक नहीं आ सकता था। सायंकाल लोगों ने देखा, जल एकदम दिवाल के नीचे उतर गया और शनैः-शनैः आधो रेत में पहुँच गया। उसके पश्चात् आज तक ऐसे विकराल रूप से गंगा माता ने दर्शन नहीं दिया। गुरु दया से न किसी को कहीं जाना ही पड़ा न आश्रम को एक पैसे भर की वस्तु की हानि ही हुई। गुरु की दया से सव कुछ सुरक्षित भी रहा और गुरु ने परीक्षा लेकर उसमें सफलता भी दे दिया।

अगर गुरुदेव की दया पर कुछ विशेष लिखना ही चाहे तो एक मोटा पोथा तैयार हो जाय। परन्तु न इतना लिखना ही है न गुरु की अन्य सेवाओं से समय ही मिल पाता है। जो कुछ भी लिखने का प्रयास किया जाता है वह भी गुरु की ही दया से टूटा-फूटा, चलते-फिरते लिख दिया जाता है। एक दिन काल का कलेवर तो वनना ही है, संसार में यदि मानव चाहे तो असम्भव कुछ भी नहीं है। नेपोलियन वोनापार्ट कहता था कि 'असम्भव' शब्द को कोश से निकाल देना चाहिये, क्योंकि मानव

तो कर्म करने के लिये ही संसार में आया है। हमारे भारतीय मनीषियों का भी यह दिव्य सन्देश है कि मानव योनि कर्म योनि है और मनुष्येतर समस्त योनियाँ भोग योनियाँ हैं। जैसे मकड़ी स्वयं जाला वनाकर अपने प्राण अपने आप उसमें फँसा कर मर जाती है, ठीक उसी प्रकार मनुष्य सुभाग्य और दुर्भाग्य अपने आप वनाता है। हिम्मत के द्वारा गुरु की शरण लेकर दैव को काटा जा सकता है। जीवन में गुरु शरणागति एक प्रेरणा देती है, मानव शक्ति-पुंज का भंडार वन जाता है।

हमें अच्छी प्रकार याद है. उस समय हम केवल १८ वर्ष के थे और उसी साल गुरुभक्ति की शरण में आये थे। कुम्भ का मेला समाप्त हो गया था। इस वर्ष माघ कुम्भ का मेला झूंसी की ओर लगा था, शायद १९५४ का वर्ष था। जव तक श्री गुरुदेव नारायण महाप्रभु का इक्कीस वर्षीय अनुष्ठान समाप्त नहीं हुआ था, तव तक वह किसी सवारी पर नहीं चढ़ते थे, न पदत्राण धारण करते थे, न छाता ही लगाते थे। साधारण श्वेत वस्त्र को धारण करना, भोजन कुछ भी न करना, कभी-कभी दिन में एक वार कोई सब्जी ले लेना, इस प्रकार से कठोर नियम पर चलते थे।

पूर्णमासी का स्नान करके भगवान प्रातःकाल ही पैदल चल कर त्रिवेणी से शिवकोटी पधार गये। साथ में केवल यह सेवक थी। वाकी लोगों को कह दिया था कि सामान लेकर तुम लोग सवारी से आ जाना। सायंकाल चार वजे तक जव वह लोग शिवकोटी नहीं पहुँचीं, तव भगवान गुरुदेव ने सेवक को आज्ञा दी कि तुम जाओ त्रिवेणी और वहाँ से वे लोग क्यों नहीं पहुँचीं पता लगाओ। यदि सवारी उन लोगों को न मिली हो तो सवारी करके भेजो। हमने सोचा, धन्य है गुरुदेव आपकी दया को। अभी तो आप के साथ ८ मील पैदल चल कर आये

हैं। फिर ६ मील पैदल जायँ, क्योंकि हम भी सवारी पर नहीं चढ़ते थे। वहाँ से फिर ६ मील पैदल चल कर कब पहुँचेंगे। मन ही मन गुरु आज्ञा को प्रणाम किया और चरण स्पर्श करके त्रिवेणी पहुँचे। वहाँ का विचित्र हाल था। झूंसी पार जाने के लिये जो पुल बने थे वह टूट गये थे। गंगा जी प्रबल रूप से बढ़ रही थीं। हमने सोचा, अब क्या करें? उस पार जाकर उन लोगों का पता कैसे लगायें? गुरु आज्ञा का पालन तो करना ही था। इतने में एक नाव वाला दिखाई पड़ा, हमने कहा—भय्या! उस पार जाना है, हमको पहुँचा दोगे। मेरे गुरु रूप नाविक ने कहा—जरूर पहुँचा दूंगा। हम उस ओर ही जा रहे हैं। वहाँ जब पहुँचे तब देखते हैं कि गुरुदेव महाराज का जहाँ शिविर था, वहाँ सब जलामय है। सेविकाओं का कुछ पता नहीं कि वह कहाँ गईं। इधर-उधर कुछ खेत वाले दिखाई पड़े, उनसे पूछा—भय्या! इस शिविर के भक्त लोग कहाँ गये। उन लोगों ने कहा कि वह लोग यहाँ से तीन बजे चले गये। जिस नाव पर बैठ कर आये थे वह तो छोड़कर चला गया था, दूसरी नाव मिलने का कोई ठिकाना नहीं था। बड़ी देर तक इधर-उधर देखते रहे। गंगा जी धीरे-धीरे बढ़ती चली आ रही थीं। जहाँ हम खड़े थे वहाँ भी पानी आने लगा। इतने में एक पीपे का पुल दिखाई पड़ा, उसी पर चढ़ कर बैठ गये, हमने मन में सोचा—अब जब भी गुरुदेव की कृपा होगी नाव मिलेगी। गंगा जी जितने भी वेग से बढ़ेंगी, इस पीपे को तो डुबोयेंगी नहीं, ऐसा सोच कर निर्भयता के साथ आँख बन्द करके गुरु नाम जपने लगे। इतने में किसी ने आवाज दी, भाई जी! कहाँ जाना है? डोंगी चाहिये? उसकी आवाज से आँखें खुल गईं। देखा, सामने एक छोटी सी नाव लिये एक बूढ़ा मल्लाह बैठा है। हमने कहा—मल्लाह भय्या! जरा बाँध पर पहुँचा दोगे। बूढ़े ना व

वाले ने कहा—साधु महात्मा को सेवा तो हम लोग करते ही रहते हैं। चलिये पहुँचा देंगे। वांध पर पहुँच जाने के पश्चात् ज्ञात हुआ रात्रि आठ वजे का समय हो चुका है। अव यहाँ से शिवकोटी अकेले पैदल कैसे जायँ ? एक समस्या सामने खड़ी हो गई। भगवान गुरुदेव का हृदय से स्मरण किया और उनको याद करते-करते काली सड़क का रास्ता पकड़ लिया। जव जार्ज टाऊन और टैगोर टाऊन के नुक्कड़ के तालाव के पास पहुँचे, देखा, सामने से एक छोटा सा वालक भक्त रामकीर्तन भाई साइकिल पर चढ़ा चला आ रहा है, उसका घर जार्ज टाऊन में था। उसको देखते ही हमको लगा धन्य हो मेरे भगवान, तेरी कृपा अपने शरणागतों से दूर नहीं रह सकती।

यजुर्वेद का एक श्लोक है—

कुर्वन्नेह कर्माणि जिजीविशेच्छतं समाः ।
एवं त्वयिनान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे ।।

कर्तव्य का पालन करते हुये सौ वर्ष तक जीवित रहने की इच्छा करो। यही मानव के लिये कर्म में अनासक्ति लाने का मार्ग है। यदि गाढ़ परिश्रम से गुरु के चरण-कमलों में अटल विश्वास रख कर कोई भी कर्म किया जाय तो ईश्वर अवश्य उसमें सफलता प्रदान करता है। इसमें कोई सन्देह नहीं है। मानव क्या नहीं कर सकता ? वह स्वयं भगवत स्वरूप है। यदि वह अपने स्वरूप से अनभिज्ञ है तो भी यदि वह अपने इष्ट के चरण-कमलों में अटल विश्वास और निष्ठा रखता है तो वह जगत की प्रत्येक उलझनों एवं समस्याओं को सुलझा कर जीवन शोक और मोह से रहित कर सकता है। यह संसार की सारी सफलता अपने ऊपर निर्भर है। यदि हाथी सभा में से बुद्धिमान की खोज कर सकता है, चींटी गगनचुम्वी अट्टालिकाओं में छिपा कर रखी हुई शक्कर की खोज कर सकती है, चकोर

अंगारे निगल सकता है, मैना मनुष्य की वोली की नकल कर सकती है तो क्या मानव ही ऐसा अकर्मण्य और असमर्थ है जो प्रत्येक कार्य नहीं कर सकता ? केवल मन की ढिलाई है। मान लीजिये कभी किसी कार्य की सफलता में असम्भावना सी प्रतीत हो भी तो जिस प्रकार चन्दन से विष प्रकट हो सकता है और विष से अमृत, उसी प्रकार वहुत परिश्रम से असफलता भी सफलता में परिणित हो सकती है।

छोटे भक्त वालक को साथ लेकर हम रात्रि को दस वजे शिवकोटी पहुँच गये। अव भी कभी किसी कार्य के लिये मन में आने लगता है कैसे करेंगे ? तत्काल बुद्धि कहती है—"मूर्ख कहीं का, कर्ता-धर्ता तो सर्वेश्वर गुरु हैं, कैसे होगा की कौनसी वात है ?" पिछले वर्ष हम लोग गुरु पूर्णिमा महोत्सव प्रारम्भ होने के दस दिन पूर्व नेपाल से आ गये थे। वहाँ से आने के पश्चात् श्री गुरुदेव भगवान ने हमको बुलाकर कहा—"देखो ! गुरु पूर्णिमा महोत्सव में कोई लोला पार्टी नहीं बुलाई जायेगी, गृहस्थ भक्तों के वच्चों को वुलाकर १४ दिन के लिये १४ लीला तैयार करा लो। गुरु से वाद-विवाद करना शिष्य के लिये वर्जित है। होनी-अनहोनी जो आज्ञा दे वह शिरोधार्य करना चाहिये, क्योंकि आज्ञा देने वाले वही हैं और कार्य को पूर्ण करने वाले भी वही हैं। गृहस्थ घर की भक्त वालिकाओं को फोन करके और आदमी भेज कर बुलवाया गया। गुरु पूर्णिमा महोत्सव प्रारम्भ होने के आठ दिन शेष रह गये हैं। ऐसी अपार मेरे भगवान गुरुदेव नारायण प्रभु को दया हुई कि किस प्रकार चौदह लीलायें लिखी गईं और किस प्रकार उन भक्त वालिकाओं ने नित्यप्रति रट कर दो घंटे स्टेज पर अभिनय किया, यह रहस्य न वह लोग समझ सकीं, न हम लोग ही समझ सके। डाइरेक्शन देने वाला भी कितना सिर मारेगा, यदि अभिनय-

कर्ता कुछ कर न सके। वालिकायें कहती थीं कि स्टेज पर जाते ही हम लोगों को एक के वाद एक संवाद अपने आप याद आता है। जनता के जो भी लोला का दर्शन करने आते वह लोग यही कहते थे कि ऐसी लीला हम लोगों ने देखी ही नहीं थी।

गुरुदेव की दया को लाइनों में वद्ध नहीं किया जा सकता। उनकी कृपा का अनुभव उनके भक्तों को पल-पल में अनुभव में आता है, लेकिन वह अनुभव करके भी भूल जाते हैं। यदि न भूलें तो जोवन में कल्याण ही कल्याण है। यशोदा मय्या को भगवान श्री कृष्ण श्याम सुन्दर ने कितनी वार अपने स्वरूप का वोध कराया, लेकिन माया के आवरण में वह वार-वार उनके यथार्थ ब्रह्मत्व को भूल कर उन्हें अपना पुत्र समझ कर उनकी माया से मोहित हो जाती थीं। भगवान श्री राम के ब्रह्मत्व को जानते हुये पार्वती जी को मोह उत्पन्न हो गया, वड़े-वड़े ऋषि-महर्षियों को अज्ञान के आवरण ने ढक लिया।

मेरे भगवान गुरु नारायण महाप्रभु क्या हैं, क्या नहीं हैं, इस वात का बुद्धि थाह नहीं पा सकती, उनकी ब्रह्म शक्ति, सर्व-व्यापकता, भक्तवत्सलता को लेखनीवद्ध नहीं किया जा सकता।

१९६० की एक घटना प्रभु की सर्वव्यापकता पर स्मरण आ गई। श्री भगवती महायज्ञ की घटना है। यह नौ कुंडों का महायज्ञ त्रिवेणी क्षेत्र में हुआ था। जिस समय त्रिवेणी में सरकारी व्यवस्थापकों एवं पंडों तक की कुटियायें भी नहीं पड़ी थीं, उसके पूर्व ही हमको और विष्णू वहन जी को यज्ञ की व्यवस्था करने के लिये श्री गुरुदेव भगवान ने भेज दिया। सरकारी विजली एवं पानी का भी कोई प्रवन्ध नहीं हुआ था। रात्रि के घोर अन्धकार में हम और विष्णू वहन जी व साथ में पहुँचाने के लिये रामकीर्तन भाई थे पहुँचे। शुरू पौषमास की कड़कड़ाती ठंडक, न वहाँ कोई कुटी न कैम्प। सामान सब

मैदानों में रख दिया गया। समस्या यह हुई कि ऐसी ठंडक में इस मैदान में कैसे विताया जायेगा ? हम लोग इसी सव उधेड़-वुन में थे कि शिवगोविन्द दास टेन्ट वाले का उधर से एक आदमी आ पहुँचा। हम लोगों को देखते ही वह वोला--"माता जी ! आप लोग इस प्रकार खुले मैदान में कैसे वैठी हैं ?" हम लोग कुछ नहीं वोले। रामकीर्तन भाई ने कहा--"अरे वात क्या कर रहे हो, एक-दो टेन्ट नया अच्छा देख कर ले आओ, सामान तो रखा जाय। कल कुटियों की व्यवस्था की जायेगी। पाँच मिनट में वह व्यक्ति पता नहीं कहाँ से दो टेन्ट ले आया और अपने आप रामकीर्तन भाई की सहायता से गाड़ कर सव सामान टेन्ट के अन्दर रख कर चला गया। हम और विष्णू वहन जी देखते रहे कि आखिर यह कहाँ से आया और किधर जा रहा है, लेकिन उस व्यक्ति का कुछ भी पता नहीं चला कि किधर से आया और कहाँ गया। हम लोगों ने कहा—यह भी उन्हीं गुरु का दूत था जिन्होंने यहाँ विना व्यवस्था के भेजा था। दूसरे दिन प्रातःकाल चार वजे स्नान करने के लिये त्रिवेणी जी गये। चारों ओर कुहरा छाया हुआ था। मार्ग नया था, नित्य आने वाले को थोड़ा अन्दाज रहता है, हम लोग नये थे। विष्णू वहन जी को सामान की रक्षा के हेतु कुटी में ही छोड़ आये थे और उन्होंने कहा कि हम थोड़ा दिन निकलने पर जायेंगे, क्योंकि अन्धकार में हमें रास्ते का अन्दाज नहीं मिलेगा। उस घने कोहरे में चलते-चलते त्रिवेणी की ओर न पहुँच कर जमुना जी की ओर पहुँच गये। अन्धकार में यह भी नहीं पता चलता था कि यह संगम है या जमुना जी। केवल ढेर-ढेर की ढेर चावल के पुआल का ढेर लगा हुआ था। ज्यों स्नान के लिये नीचे जल में पैर डाला, पैर के नीचे जमीन ही न आये। किनारे की मिट्टी भी दलदली थी। एक ओर पैर के नीचे जमीन नहीं,

दूसरी ओर दलदल में हाथ, ऊपर से वदन ठंडा हुआ चला जाय। कुछ नहीं सूझा। केवल भगवान दादा गुरु सामने आ गये और वस मुँह से गुरुमंत्र का जप होने लगा। इतने में क्या देखा कि उन पुआल के गट्ठों में से दो गट्ठा लुढ़कता हुआ हमारी ओर आया, एक पैर के नीचे आ गया और एक हाथ के पास। हम झट से उसी गट्ठे के ऊपर पैर रख कर, जल के वाहर आ गये। मन ही मन भगवान गुरु को प्रणाम किया और स्तुति की कि "हे मेरे नाथ, आपकी कृपा से जीव भवसागर पार कर लेता है और यह अथाह भवसागर का जल गऊ के खुर के वरावर हो जाता है फिर आपकी जिसके ऊपर कृपा हो उसके लिये यह नदी कौन सी वड़ी वात है? लेकिन नाथ, हम लोग साधारण चरणों के छोटे से सेवक हैं, आपने अहैतुकी कृपा करके प्राण-रक्षा हेतु पुआलों का गट्ठा वन कर पधारे। जिस प्रकार द्रौपदी के लिये साड़ी वनकर आये थे उसी प्रकार आज हमारे लिये पुआलों का गट्ठा वन कर आये।"

उस वर्ष मकर मास में गुरुदेव भगवान ने अपने अनेक सर्व-व्यापक रूप का दर्शन कराया। अध्यात्म केन्द्र की कक्षा प्रत्येक रविवार को लगती थी और इस सेवक का नियम था प्रत्येक रविवार को अध्यात्म केन्द्र में उपस्थित होने का, चाहे पाँच डिग्री बुखार भी चढ़ा रहे। हम लोग माघ लगने के वाइस दिन पूर्व त्रिवेणी पहुँच गये थे, अतः अध्यात्म केन्द्र में उपस्थित होने के लिये प्रत्येक रविवार को प्रातःकाल पाँच वजे पैदल ही आश्रम के लिये चल देते थे। पौने सात वजे तक पहुँच जाते थे। दोपहर को विष्णु वहन जी रिक्शे से पहुँच जाती थीं, शाम को पैदल ही हमको लेकर आ जाती थीं। एक दिन वर्षा हो रही थी, प्रातःकाल तो पहुँच ही गये। सायंकाल वर्षा के कारण कक्षा देर में समाप्त हुई। हम लोगों को आश्रम से चलने में ही सात

वज गये, जब कि हम लोग सात वजे तक त्रिवेणी पहुँच जाते थे। वाँध रोड के रास्ते से हम लोग त्रिवेणी जाते थे। जब सात वजे आश्रम से चले, तब त्रिवेणी क्षेत्र के कैम्प में ९ वजे पहुँचना ही था। शीत के कारण मार्ग एकदम शून्य हो गया था। ८ वजे हम लोग आधे रास्ते में ही थे, वीच में एकांत जंगल पड़ता था, विष्णु वहन जी भी मन में डरने लगीं, उनकी मन की भावना को देखकर हमारे मन में भी आ गया कि इतना एकांत मार्ग है, रात्रि का समय और वीच में जंगल है। इस पूरे मार्ग के मध्य में हम दो ही राहगीर हैं। मन जरा गीला-गीला होने ही लगा था कि देखा दो भाई जो श्री गुरुदेव भगवान के भक्तों में थे आ रहे हैं। हम लोगों को देख कर वोले—"वहन जी! ऐसे अंधकारमय मार्ग की ओर से आप लोग कहाँ जा रही हैं?" हम लोगों ने सम्पूर्ण वृत्तांत वतलाया। वह लोग वोले—"हम लोगों को श्री गुरुदेव भगवान ने अचानक ही इस ओर घूमने जाने की प्रेरणा करके भेज दिया। चलिये हम लोग भी आपके साथ तक त्रिवेणी जी चलते हैं, गंगा मय्या का दर्शन साथ-साथ श्री गुरुदेव भगवान के कैम्प का भी दर्शन हो जायेगा।" वह लोग कैम्प तक छोड़ कर चले गये।

जव हम लोग दूसरे रविवार को आश्रम आये और पूछा कि उन लोगों ने उस दिन की घटना वतलाई थी? मुआ जी लोगों ने कहा—यहाँ तो उन्होंने कुछ नहीं कहा। जव श्री गुरुदेव भगवान से निवेदन किया तो वह मुस्करा कर रह गये। और आज्ञा दी कि अव तुम लोग उस मार्ग से मत जाना, जो चालू सड़क है उसी से जाया करना। हम समझ गये, छोटा मार्ग पड़ने के कारण एकांत मार्ग की ओर से हम लोग जाते हैं लेकिन भगवान श्री गुरुदेव को योगक्षेम करना पड़ता है। इसीलिये वह उस ओर से जाने को मना कर रहे हैं। धन्य है ऐसे गुरुदेव

ग्रापकी दया को। जिसने ग्रापकी शरण ली उसको कहाँ दुख ग्रौर कष्ट। ईश्वर, माया, संसार ग्रौर जगत सब ग्राप ही हैं। ग्रापसे अलग कुछ भी नहीं है। आपकी महिमा, शक्ति, ग्रौर संरक्षता का जीवन में पग-पग पर ग्रनुभव होता है। जिसको ग्रापके चरणों का एक मात्र अवलम्बन और विश्वास है, उसके लिये जगत में कहीं भी दुख या ग्रशान्ति नहीं है। सर्वत्र आनन्द ही ग्रानन्द व्याप्त है। मेरे भगवान गुरुदेव सदैव सबको यही कहते हैं, ग्रकेले भक्ति करनी बड़ी सरल है, समाज को लेकर चलना एक जहाज को लेकर चलना है। शिष्यों के मन का त्राण करना पड़ता ,है। यह जन्म-जन्म से मलिन मन कहीं विषयोन्मुख न हो जाय क्योंकि जिस पर भूत सवार होता है वह नहीं जान पाता कि मेरे ऊपर भूत सवार है। वह भूत की ग्राज्ञा पर ग्रमर्यादित कर्म करने पर ग्रपने को ठीक कर्म करने वाला समझता है। विकार से ग्रावेशित सांसारिक जीवों का यही हाल होता है। ग्रहंकार और क्रोध से आवेशित जीव ग्रविवेकी कार्य कर बैठते हैं। गुरु अपनी नकली फुफकार से उनको सावधान न करें तो एक साधक के साथ ग्रनेक जिज्ञासुग्रों एवं गृहस्थों का हनन हो जाता है। इसीलिये समाज को सीधे मार्ग पर चलाने के लिये गुरुजनों को ग्रनेक युक्ति करनी पड़ती है। भक्तों को दृढ़ विश्वास एवं प्रेम रखना चाहिये। यदि भक्तों के मन की विश्वास रूपी जड़ दृढ़ रहती है तो कोई भी ऐसी परिस्थिति नहीं जिस पर वह विजय न प्राप्त कर सके। ,मीरा, प्रहलाद, तुलसी, सूर, रैदास, भक्त कुंवा, इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। हम लोगों के स्वयं इसी जीवन में, इसी कलिकाल में ग्रपने ऊपर घटित घटना के ग्रनेक प्रमाण पीछे उद्धृत किये हैं। इसी प्रसंग में पुनः एक ग्रन्य घटना स्मरण में आ गई जिसको विना लिखे लेखनी नहीं रुक रही है। १६७१ की चिरस्मरणीय घटना

है। श्री गुरुदेव जी ने, बैठे-बैठे अचानक कहा, "कल तुमको गया जी जाना है, पाँच-छः जने को और लेती जाना क्योंकि दो दिन पश्चात् हम भी गया जी जायेंगी। शीघ्र ही वहाँ का सब प्रवन्ध करके फोन कर देना। हम लोगों ने सोचा इतनी जल्दी टिकट तो मिल नहीं सकती, सामान के साथ मोटर में इतने लोगों का एक साथ जाना भी असम्भव है, अतः सरोज वहन जी की जीप मंगवा ली गई। वृहस्पतिवार को प्रातःकाल ५ वजे हम लोग आश्रम से गया के लिये चल दिये और यह सोचा कि यहाँ से ६ घंटे का रास्ता है, ज्यादा देर लगेगी तो आठ घंटे में ही पहुँच जायेंगे। ड्राइवर से पूछा गया कि तुम कितने घंटे में पहुँचा सकते हो, उसने कहा—पाँच घंटे में पहुंचा देंगे।

इलाहावाद से ही उसने गलत मार्ग पकड़ लिया। फाफामऊ से सीधे वनारस की लाइन न पकड़ कर नैनी, मिरजापुर होता हुआ छह घंटे में वनारस ही पहुँचा जव कि उसे तीन घन्टे में वनारस पहुंचना चाहिये था। जव वह वनारस में आकर रुका तव हमने ड्राइवर से पूछा, तुमको वनारस ही आना था, तव सीधे आश्रम से फाफामऊ मार्ग पकड़ कर क्यों नहीं आये? तव कहने लगा कि हमारे दिमाग से यह वात उतर गई कि उधर से पास पड़ेगा। जो कुछ हुआ, किसी प्रकार आगे वढ़े। शाम को सात वजे हम लोग पानी से लथपथ सहस-राम पहुंचे। वनारस से थोड़ी दूर आगे जाने के पश्चात ही वर्षा ने विकराल रूप धारण कर लिया था। यह सेवक आगे की सीट पर थी, अतः पानी से कोई सुरक्षा न होने के कारण सर्दी से शरीर कांपने लगा था। वातचीत करने पर वहाँ के लोगों ने वतलाया, आगे घोर जंगल है, फिर नदी है, इसके पश्चात् दो-तीन स्टेशन पार करने के पश्चात् गया जी है। अतः आप लोग रात्रि में पास के विश्राम गृह में निवास करने के पश्चात् प्रातःकाल आगे

वढ़ियेगा । हमने और गिरधर जी ने सोचा—रात्रि के लिये कोई स्थान देखना चाहिये, लेकिन ढूँढ़ने पर स्थान उचित नहीं मिला । थोड़ी दूर आगे वढ़ने पर एक साधारण वेषधारी सज्जन मिले । उन्होंने कहा—माता जी ! आप लोग रात्रि में आगे न जाइये । यहाँ से कुछ दूर पर एक छोटा सा परम पवित्र आश्रम है, रात्रि में आप लोग वहीं पर निवास करिये, प्रातः आगे वढ़ियेगा । सज्जन के मार्ग निर्देशानुसार हम लोग थोड़ा आगे वढ़कर देखा, एक वड़ा फाटक वना हुआ है जिस पर लिखा हुआ है "श्री गुरुदेव आश्रम" । फाटक के अन्दर प्रवेश करने पर कुछ दिखाई नहीं पड़ा, केवल धान के खेत ही खेत थे, वीच में पतली सी पगडंडी वनी हुई थी । हमने मन में सोचा द्वार पर श्री गुरुदेव आश्रम लिखा हुआ है, अवश्य आगे कहीं पर भी आश्रम होना चाहिये । वर्षा थोड़ी देर के लिये रुक गई थी, लेकिन शरीर का भीगा हुआ वस्त्र होने के कारण शरीर ठंड से काँप रहा था । लगभग चार फर्लाङ्ग आगे वढ़ने पर विजली का प्रकाश दृष्टिगोचर हुआ । छोटा सा पवित्र आश्रम वना हुआ था, आश्रम के समक्ष कुछ कदली फल के वृक्ष थे, कुछ गेंदे और पारिजात की वाटिका थी । वरामदे में एक अधेड़ से विल्कुल मामूली श्वेत वस्त्रधारी संत वैठे थे । हम लोगों को देखते ही स्वतः वोले—देवियाँ हैं ! अच्छा आप लोग रात्रि को इसी में विश्राम करिये । सव सामान ब्रह्मचारी लोग जीप से आश्रम में ले आयेंगे । आपका ही आश्रम है । अभी सव व्यवस्था हो जाती है । आप लोग तो कुछ खायेंगे नहीं । दूध की व्यवस्था करते हैं, आप लोग चाय पी लीजिये । हम लोगों को वड़ा ही आश्चर्य हुआ, इस घोर जंगल में एकदम एकांत स्थल में यह आश्रम कहाँ से आया ? भगवान दादा गुरु की मूर्ति नेत्रों के सामने नाचने लगी । वृद्ध महात्मा ने कहा—देवी ! आप लोग क्या सोच रही

हैं ? आपका ही आश्रम है। हम लोग गुरु को ही इष्ट मानते हैं। इतना कहते हुये विद्यार्थियों से कहा—देवियों के विश्राम के लिये तख्त का प्रवन्ध कर दो एवं मोटर चालक को कहो, उसको यहाँ आने की आवश्यकता नहीं है, वह जीप पर ही सोये, क्योंकि इधर का मार्ग भी खतरनाक है, उधर स्थान भी खतरनाक है, अतः अपने वाहन की सुरक्षा स्वतः करे, आगे गुरु मालिक है।

हम लोगों ने स्नान आदि करके नित्य का कीर्तन, पूजा-पाठ आदि किया। विद्यार्थी दूध तो ले आया, लेकिन विल्कुल पानी वाला था, अतः हमने और गिरधर जी ने चाय भी नहीं ली, अन्य गुरु वहनों ने चाय पी ली। प्रातःकाल दो वजे उठकर ही जाना चाहा, परन्तु ज्यों ड्राइवर ने गाड़ी पीछे करके मोड़ना चाहा, गाड़ी धान के खेत में फँस गई। हम लोगों ने कहा—गुरु सव अच्छा ही करता है, यह भी कुछ अच्छा ही किया होगा ? रात्रि में इस घोर निर्जन वन में एक आश्रम वनाकर रक्षा करी, अव जीप फँसा कर भी कुछ योगक्षेम करते होंगे। भक्तों का योगक्षेम करना इनका काम ही है। हम लोग दो वजे से ही खुले मैदान में बैठे रहे, क्योंकि वृद्ध वावा को वार-वार परेशान करना अच्छा नहीं लगा, लेकिन वह वावा तो मेरा गुरु ही वन कर बैठा था। प्रातः पाँच वजते ही पता नहीं कहाँ से वीस-पच्चीस आदमियों का एक समूह लेकर आये और वोले—अव जाने का समय हो गया है, अव जाना ठीक है। ड्राइवर ने कहा—वावा जी ! गाड़ी तो धान के तालाव मे फंस गई। वावा जी वोले—कोई वात नहीं। उन आदमियों को इशारा किया, उन लोगों ने उस गाड़ी को उठा कर सड़क पर इस प्रकार रख दिया जिस प्रकार कोई एक खाली टोकरी एक स्थान से दूसरे स्थान पर रख दी जाय। उसके पश्चात वह वावा जी

किधर गये एवं वह आदमी लोग कहाँ गये, कुछ पता नहीं चला।

इसके पश्चात् लगभग एक मील आगे बढ़ने पर पता चला कि नदी के पुल का कुछ हिस्सा टूट गया है, अतः गाड़ी बहुत धीरे-धीरे और सम्भाल कर ले जाना है, यह बात वहाँ खड़े हुये दो-तीन जनों ने बतलाया था। हम लोगों ने कहा—देखो ! भगवान गुरुदेव की कितनी कृपा है हम लोगों पर, यदि धान के खेत में जोप न फँसाते तो वेग से गाड़ी आकर इसी नदी में गोता लगाती, क्योंकि अब तो सूर्य की पौ फट चुकी है। पैदल चलने वाले लोगों ने पुल टूटने को पूर्व सूचना दे दी। यदि अँधेरा होता तब क्या होता ? उस नदी को पार करके और कुछ आगे बढ़े तो पता चला आगे सड़क पर बड़ा भारी फँसाव है, तीन बजे रात्रि से एक ट्रक फंसी पड़ी है। इस समय उस ट्रक के पीछे नब्बे बस खड़ी हैं। सरकारी लोग आकर जब पहली ट्रक निकालेंगे तब पीछे की अन्य गाड़ियाँ जा सकेंगी। हम लोगों ने कहा—देखो गुरु की कैसी अद्भुत कृपा है। पाँच घन्टे हम लोग प्रतीक्षा करके तब आगे बढ़े। ६ घन्टे में तय करने वाले रास्ते को हम लोगों ने ३६ घन्टे में पार किया। गर्मी का दिन था, प्यास का कुछ भी पता नहीं चला। सायंकाल पाँच बजे गया पहुँचे। हम लोगों ने कहा – भय्या ! तुमने तो इतनी जल्दी पहुँचाया कि बस ऐसा लगता है कि तुम्हें मार्ग ही नहीं मालूम। लेकिन धन्य है गुरुदेव, जिसने कंटकाकीर्ण पथ को सहज में ही पार कराके अपनी सेवा को एक दिन के अन्दर ही पूर्ण कराने की व्यवस्था करा दी। एक दिन में ही सब भक्तों ने मिलकर श्री गुरुदेव भगवान के निवास एवं स्वागत की सब व्यवस्था कर दी। गुरुदेव भगवान के स्वागत में लगभग पाँच सौ भक्त उपस्थित होकर जयकारा लगा रहे थे।

इन सव घटनाओं से भगवान गुरु की वाणी के द्वारा निकले हुये एक-एक वचन अनुभव में आते हैं। वास्तव में जिन्होंने गुरु की वाणी को अपने जीवन में ढाल लिया है उनका पृथ्वी का कण-कण सहायक वन जाता है। प्रेम की शिरोमणि गोपियों के लिये वृज का एक-एक वृक्ष, एक-एक रास्ता, भगवान श्याम सुन्दर के विरह का उद्दीपक वन गया था। भगवान निर्दोष रूप से सवमें व्याप्त हैं, पर जिस पर उनकी कृपा हो जाय वही उसका निर्दोष रूप से दर्शन कर पाता है। इसलिये गीता के अध्याय पाँच में भगवान अर्जुन को ज्ञानी के लिये उसके पथ का मार्ग-दर्शन कराते हुये कहते हैं—

विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।
शुनि चैव श्वपाके च पंडिताः समदर्शिनः ॥१८॥

भक्त के लिये भगवान ही निधि हैं। यदि भगवत दया प्राप्त कर ली तो जगत की समस्त सम्पत्ति पा ली। अपने प्रेमी भक्त के साथ वह निरन्तर खड़े रहते हैं। वह विश्राम करता है तव भी वह एक टक से उसकी ओर निहारते हैं, कहीं कोई उसकी निद्रा न भग्न कर दे। उसकी अनुभूति तथा साधना में कोई वाधक नहीं हो सकते। वह स्वयं भले ही कुछ कह कर उसे रुठा दे, उसकी प्रेम की परीक्षा करने के लिये विपरीत वातावरण ला दे, परन्तु दूसरा अंगुली भी नहीं उठा सकता। जव भक्त गिरने लगता है, वह धीरे से जाकर उसे सहारा दे देते हैं। स्वयं चोट सह लेते हैं, परन्तु अपने प्यारे भक्त के ऊपर चोट की आघात नहीं आने देते। नारद जी जव पथ से गिरने लगे, अहङ्कार-अंकुर जाग उठा, तव यह विचार करके कि कहीं मेरे प्यारे नारद जी की जगत में हँसी न हो जाये, स्वयं नारि वनकर, उनके अभिमान का मर्दन किया, एवं नारद का श्राप शिरोधार्य करके वन-वन में भटके तथा नर-लीला की, प्रेम-पाश की मर्यादा को अटूट रक्खा।

भक्त अपने इष्ट को मानव समझ कर बलिदान नहीं होता। उसकी दृष्टि मानवीय छवि नहीं, वह तो ऐसे अद्भुत स्वरूप का दर्शन करता है, जिसका साधारण जीव अनुमान तक नहीं लगा सकते। उसकी कल्पना में वह भाव नहीं आ सकता।

जिसके मन की क्षुद्र वासनायें नष्ट हो जाती हैं, ऐसे प्रिय शिष्य से गुरु कुछ भी प्रतिदान नहीं चाहता। वह उत्तरोत्तर उस भक्त के प्रेम का भूखा बन जाता है। गुरुनिष्ठ पर कभी समस्यायें आ ही नहीं सकतीं। कठिनाइयाँ आने जैसी मालूम पड़ती हैं, पर स्वयं विलीन हो जाती हैं। मेरे इष्ट भगवान श्री गुरुदेव ने अपनी कैसी-कैसी दया की इसका पूरा विवरण देना असम्भव है, लेकिन यदा-कदा जो सेवक को स्मरण है लिखने का प्रयास किया गया है। भगवान गुरु की दया अगाध है, गुरु के चरण-कमल का स्मरण ही उसके साधन की सिद्धि है। वह तीर्थ, व्रत, ब्रह्मा, विष्णु महेश है। गुरु दया से बढ़ कर जगत में कोई तत्व नहीं है। गुरु परन्तर नास्ति सत्यं सत्यं वरानने।

गुरु दया की शक्ति को बतलाते-बतलाते एक घटना और स्मरण आ गई। एक श्रद्धालु भगवान के चरणों की अनुरागिनी भक्त कई दिनों से सत्संग में नहीं आई थीं। हमने एक दिन उनसे पूछा, आप प्रेम का बखान तो बहुत कुछ करती हैं, और कुछ सेवा नहीं तो कम से कम नित्य आने की सेवा तो कर लीजिये। आपको सत्संग का इतना शौक है, परन्तु आप रहती कहाँ हैं। नित्य नियम से सत्संग में भी नहीं आतीं। वह बोलीं, क्या करूँ, मेरा प्रारब्ध ही ऐसा है। पाँच वर्ष की बेबी है, एक वर्ष हो गये, उसको हर दो तीन महीने में ऐसा रोग हो जाता है कि सारे बदन में खून का पानी बन जाता है, सारे शरीर में सूजन आ गई है। उपचार करने पर धीरे-धीरे सूजन निकलती है, शरीर से सुई के द्वारा पानी निकाला जाता है हमने उनसे

कहा, "कल आप उस कन्या को यहाँ ले आइयेगा, भगवान गुरु का फूल प्रसाद तथा चरणामृत दे देंगे उसी के सेवन से गुरुदेव भगवान की ऐसी कृपा हो जायेगी कि रोग दूर हो जायेगा।" दूसरे दिन वह उस कन्या को लेकर आईं। यों तो अवस्था में कन्या पाँच वर्ष की थी, परन्तु देखने में तीन वर्ष की जैसी मालूम पड़ती थी। शरीर सारा सूजा हुआ था। उसको श्री गुरुदेव भगवान का प्रसाद तथा चरणामृत दिया गया। एक हफ्ते पश्चात् कन्या की माँ ने वताया, चरणामृत के द्वारा कन्या विल्कुल ठीक है। हमने कहा, देखिये आप लोग समझती नहीं हैं, भगवत की कृपा अमोघ कृपा है, उस कृपा से भो वढ़कर अमोघ गुरु कृपा है, यों तो गुरु तथा भगवान में कोई भेद नहीं है। अज्ञानी जन जो मूर्ख होते हैं वही भेद-बुद्धि रखते हैं। जब अधर्म की वृद्धि हो जाती है, धर्म लोप प्राय होने लगता है, तव भगवान अध्यात्म के पथ को स्थिर रखने के लिये, ज्ञान से विभूषित होकर अवतार धारण करते हैं तथा जगत-जन का उद्धार करके भवसागर से पार लगाते हैं। वे सर्वज्ञ तथा सामर्थ्यवान होकर अपने अंशों के साथ जगत में आते हैं। वे विश्व रूप अनन्त आत्मा होकर भी मर्यादा में वँध जाते हैं।

जीव का स्वभाव है दुख में भगवान का स्मरण करता है, रोता जाता है, अनेक प्रकार से उनको स्तुति करता है, दया-सागर जव दया का घड़ा उड़ेल देते हैं तव शिष्य का जीवन कृतकृत्य हो जाता है और अन्तर से भाव बिखर पड़ता है—

आया जो दर पर गुरु तुम्हारे।
नय्या लगाते क्षण में किनारे॥

जीवन का दुखड़ा पल में मिटाते।
पापों की बेड़ी क्षण में हटाते॥
उद्धार जग को करन वारे ।।नय्या०।।

कैसी अनोखी दया तुम्हारी।
शरण में आते करते कृपा री॥
कुछ न कठिन है हरि ही हमारे ॥नय्या०॥

गणिका अजामिल कौन तपस्वी।
गीध जटायु कौन मनस्वी॥
वने तुम्हीं थे मोक्ष के द्वारे ॥नय्या०॥

भला वना है जीवन हमारा।
नारायण गुरु सच्चा सहारा॥
भय नहीं चाहें तारे न तारे ॥नय्या०॥

गुरु का वरदहस्त जिस भाग्यशाली के मस्तक पर हो वह पापी से भी धर्मात्मा वन जाता है। मनुष्य को पाप से छुड़ाकर पुण्य मार्ग का पथिक वनाने के लिये, अर्थं, धर्मं, काम, मोक्ष की सिद्धि के लिये, षष्ट सम्पत्ति साधन के लिये गुरु की दया सवसे सरल साधन है। चार पुरुषार्थों में गुरु दया प्राप्त करना प्रथम पुरुषार्थं है। जब साधक को गुरु की दया नहीं प्राप्त होती, उसका समस्त कर्मंफल मोरपंख के नेत्रों के सदृश है। आत्म-कल्याण अभिलाषियों का कर्तंव्य है कि गुरुपदिष्ट पर मार्गानुसार चलें, इसी से उनके जीवन का समस्त कर्मं सफल हो सकता है। गुरु दया को प्राप्त करना उत्कृष्ट तप है। गुरु की दया को प्राप्त करने का यह तात्पर्यं नहीं कि वह तपस्या से ही प्राप्त हो अथवा ज्ञान से ही प्राप्त है।

गुरु की तन, मन, वचन से आज्ञा पालन करना चाहिये। गुरु के सम्मुख चापल्यता का परित्याग करना चाहिये। इन्द्रियों का निग्रह होना चाहिये। गुरु स्वरूप में स्थित परब्रह्म तत्व की प्राप्ति गुरु की प्रसन्नता से ही हो सकती है, गुरु के समक्ष अपनी कीर्ति का अहंकार नहीं करना चाहिये।

आज्ञा भङ्गं गुरोर्देवं यः करोति विबुद्धिमान् ।
प्रयाति नरकं घोरं शूकरत्वमवाप्नुयात् ॥

गुरु की दया किसी पर भी हो सकती है चाहे वह कुलीन अथवा अकुलीन, ब्राह्मण हो अथवा शूद्र । वह शुद्ध अन्तःकरण वाला प्रण प्रेम होना चाहिये । शवरी, जटायु, गीध, अजामिल, भक्तशिरोमणि हनुमन्त लाल जी, ब्रज गोपिकायें कहाँ की विद्वान तथा तपस्वी थीं ।

परम प्रेम के समक्ष ईश्वरीय संविधान भी वदल जाता है और भक्त गुरु की दया का पात्र वन कर जोवन कृतकृत्य वना लेता है । गुरुदेव की जव कृपा हो जाती है तव वह कह देते हैं—

सर्वंधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥

तुम समस्त कर्मों के आश्रम को त्याग कर मेरी छत्रछाया में आ जाओ । तुम क्यों चिन्ता करते हो ? अर्थात् मैं स्वयं योग-क्षेम करने वाला हूँ । यदि कोई पाप भी होगा तो मैं उससे मुक्त करके विशुद्ध वना दूंगा । तुम्हें तो कुछ विचारना ही नहीं । स्वयं जगतपालक रक्षक वनकर सारा भार अपने हाथ में उठा लेता है, फिर शिष्य के लिये वाकी ही क्या रह जाता है । महाभारत के युद्ध में श्यामसुन्दर ने पांडवों का पक्ष लिया, पांडव उनकी अनन्य शरण में हो गये, अतः दुर्योधन जैसे महापराक्रमी को तथा उसकी अजय शक्ति वाली सेना को विध्वंस करके स्वयं विजयी हुये । यह है गुरु दया का ज्वलन्त उदाहरण । गुरु की दया जीव को शिव बनाकर विश्व-पूजिता वना देती है, छोटी-छोटी कठिनाइयाँ तो सर्दी के कुहरे के सदृश सूर्य की किरण के प्रथम ताप से ही नष्ट हो जाती हैं । जहाँ भगवान गुरुदेव की दया है वहाँ शेष कुछ नहीं रह जाता है ।

भर ले भर ले गुरुदया से झोली ।

विकराल कठिन भवसागर माँहि ।
गुरु दया ही पार लगाहि ।।भर ले०।।

सुख दु:ख से क्यों डरता प्रानी ।
सत्य से सब ही पाप नसानी ।।भर ले०।।

समझ बूझ कर सब कुछ सह ले ।
रोम-रोम में इन्सानी धर ले ।।भर ले०।।

कर्तव्य रहित न मानव टिकता ।
वेद पुरान सब ये कहता ।।भर ले०।।

आज जो कांटा बना है राही ।
पुष्प बनेंगे कल के माहीं ।।भर ले०।।

अपना कर तू गुरु नारायण
गुरु दया तू कर ले धारण ।।भर ले०।।

—:❁:—

राजलक्ष्मी प्रेस, १०१ विवेकानन्द मार्ग, इलाहाबाद फोन ३९८६०